श्री वीतरागाय नमः ॥

अहिंसा परमो धर्मः

चर्चा प्रश्नोत्तर

सत्यासत्य निर्णय

द्रव्यसहायक:
ला० चूनी शाह
पन्ना लाल जैन
स्यालकोट
शहर।

कथयिता :-
श्री श्री १००८
जैन भूषण श्री स्वामी
प्रेम चन्द जी महाराज

प्रकाशक
ला० पिशौरी लाल जैन हिन्दी प्रभाकर,
टीचर जैन माडरण हाई स्कूल, स्यालकोट शहर।

प्रथमावृत्ति १०००

(मूल्य ।)

धन्यवाद

यह पुस्तक स्व० ला० हरदयाल शाह जी माहर की
पुण्य स्मृति में ला० बूली शाह पन्ना लाल जी
जैन ने निज व्यय से प्रकाशित कराई।
इस लिए मैं आप को सहर्ष धन्यवाद
देता हूं और शुभ भावना करता हूं कि
आप की सम्पत्ति दिन दुगनी
और रात चौगनी।
वृद्धिंगत हो।

निवेदक :–
किशोरी लाल जैन हिन्दी प्रभाकर।

विषय अनुक्रमणिका

१	मूर्त्तिपूजा निराकरण के विषय में प्रश्नोत्तर	१०
२	पुजेरे दण्डियों द्वारा माना हुआ जड़मूर्त्ति पूजा में अनन्त व्रत रूप तप फल	५८
३	पुजेरे दण्डियों का वासादि खाने वाला और सर्व जाति का अनिष्ट मूत पीने वाला चौविहार व्रत	६८
४	शुद्ध स्थानकवासी जैन ही प्राचीन जैन हैं	७९
५	हाँ मुखपत्ति मुख पर बांधनी ही जैन शास्त्रोक्त है।	१०२
६	मुख पर मुखपत्ति बांधने के विषय में ढुण्ढी वल्लभ विजय जी की हस्त लिखित चिट्ठी।	१११
७	क्या पुजेरे लोग गंगा यमुनादि के स्नान से पाप रूप दोष निवृत्ति मानते हैं?	११८
८	पुजेरे और सनातन धर्म की मूर्त्ति मान्यता में विशेषान्तर	१२३

९ दण्डी आत्मा राम जी के चेलों द्वारा
शिवजी वैश्यागामी और उमा पार्वती)
वेश्या और श्री सनातन धर्म के मार्ग
हुए देवों की निन्दा ११८

१० दण्डी आत्मा राम की सन्तवाणी ११७

शुद्धि-पत्र

पुस्तक छपते समय इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया था कि पुस्तक में किसी तरह की अशुद्धि न रहने पावे किन्तु फिर भी प्रेस की असावधानता के कारण कुछ अशुद्धियां रह ही गई हैं। उन में से मुख्य २ अशुद्धियों का शुद्धि-पत्र नीचे दिया जाता है। आशा है कि प्रिय पाठक-गण अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ने का कष्ट करेंगे।

विशेष नोट :- पुस्तक के सब स्थानों पर सम्मूल, मुक्ट, मिथ्यात, व्यवस्था शब्दों के स्थान पर क्रम से **समूल, मुकुट, मिथ्यात्व,** और **अवस्था** शब्द पढने की कृपा करें।

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२	२	कुच्छ	कुछ
२	८	का	को
२	११	आव	आप
२	१३	जेह्वा	जिह्वा

सत्यासत्य निर्णय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१	६	लौडस्पीकर	लाउडस्पीकर
३	१०	की	को
४	११	बुद्धिमता	बुद्धिमत्ता
५	१२	बाहिय	बाह्य
७	८	धर्मोपिदश	धर्मोपदेश
८	१०	प्रास्त	परास्त
८	१४	दृष्पात	दृष्टिपात
११	३	ज्ञान	अज्ञान
११	१३	गवतयाप्त	गवतभाप्ता
११	१८	हृत	हस
२२	११	मकला	मकली
२३	४	आपमम	आक्रमण
२४	१	पक्षी	पक्षो
२४	६	होगि	होवे
२४	१३	कुष्ठ	कुछ
२५	१	मन्थी	मन्थी
२५	१७	रस ना	रसना

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२६	१४	वयर्थ	व्यर्थ
२७	१८	मूख	मूर्ख
२८	५	का	को
२८	१३	भाग	भोग
३१	१२	अमने	अपने
३३	१०	अवतो	अवतो
३३	१५	उत्तराध्ययान	उत्तराध्ययन
३४	२	चाहिते	चाहते
३४	१६	पछ	पूंछ
३५	१४	कुच्छ	कुछ
३६	६	उसे	उस से
३६	११	पीच्छे	पीछे
३८	१२	वह	वे
३८	१८	जन	जैन
३९	३	द्रोपदी	द्रौपदी
३९	१६	का	की
४०	१८	अचन	अर्चन

सत्यासत्य निर्णय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
४०	१०	जिनोचैव	जिनाचैव
४४	१५	ह्रितीय	द्वितीय
४५	७	ता	तो
४५	१९	त्यपार	तत्पार
४८	१	मोक्षात्मान्मों	मोक्षात्माओं
४८	१४	का	की
४८	१६	का	को
५१	१६	सकती	सकता
५१	१	देव की देख	देव की मूर्ति देख
५२	३	दशवैकातिक	दशवैकालिक
५३	८		न शब्द की अधिकता
५३	४	स्वाध्यायादि	स्वाध्यायादि
५५	१०	आप्	आप
५५	१४	जो	भी
५७	१२	पद	पद
६१	४	क्रियाडम्बपों	क्रियाडम्बरों
६४	६	माक्ष	मोक्ष

सत्यासत्य निर्णय

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
६५	७	कल्पिन	कल्पित
६१	१८	संयपम्मजगो	संयमपम्मजगो
८२	१८	का	को
८३	१५	नमूना	नमूने
८३	१७	जाते	जाते हैं
८३	१८	पढने	मढने
८४	२	सुमति	समिति
८५	४	पण्डी	दण्डी
८८	८	भार्गी	मार्गी
९२	५	द्वपान्धता	द्वेपान्धता
९४	७	परस्पर	परस्पर
९७	१०	माक्ष	मोक्ष
१००	३	कुढि	बुद्धि
१००	६	हाथ म	हाथ में
१०२	६	पुच्छी	पूछी
१०६	१	सुरिजन	सुरीश्वर जी
११५	९	पण्डित्य	पाण्डित्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
११६	७	अवश्यकता	आवश्यकता
११६	७	उदेश्य	उद्देश्य
११६	१७	का	की
१२४	११	पक्षर	पक्ष
१२७	१	वनिक	वणिक
१३५	१	शाक	शाका
१३६	१२	धरती	धरतीं
१३६	१८	तस्सवी	तसबी
१३८	९	लिख	लिखँ
१४०	१८	वैदिक	वैद्यक
१४१	१५	अप्रोत	इपरोत
१४३	५	परित्रायपरायम्	परित्राय परिमय
१४४	१६	हिरवहोन	हिरवहांन
५७	११	मिथ्या	मिथ्यात्व
६६	१६	'	˜
८०	४	दोर्बिय	वैश्विप
८८	४	नकस्कार	नमस्कार
१०२	११	अन्यपा	अन्यथा
१०७	१२	पृवृत्ति	प्रवृत्ति
११६	५	पश्चिरय	पाश्चिरय

भूमिका

प्यारे सज्जनो ! जो यह सत्यासत्य निर्णय नाम की छोटी सी पुस्तक आप के कर कमलों में सादर भेंट की जाती है, इस का अभिप्राय है अविद्या और जहालत से फैलते हुए मिथ्यात्व और पाखण्ड का विनाश करना।

सज्जनों ! आज इस कलियुग में अनेक प्रकार के झूठे और मतिकल्पित मतमतान्तर दिन प्रति दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। जो भी उठता है, वही प्राचीन शुद्ध सच्चे धर्म को छोड़कर नया मत अपनी मान बढ़ाई के लिए खड़ा करने की कोशिश करने लग जाता है। जिस का नयकर फल यह हुआ कि आजभारतवर्ष में अनुमान २२०० मत गिने जाते हैं। उन नए मत में चाहे सच्चाई हो, या न हो, लेकिन बहुत सारे मान प्रतिष्ठा के भूखे, नए मत चलाने वालों का मुख्योद्देश्य यह होता है कि हमारी दुनिया में किसी न किसी तरह याद २ हो जाए, और संसार हमें अपना नेता समझकर हमारा मान और सत्कार बढ़ाए। किन्तु ऐसे मान और

सत्यासत्य निर्णय

प्रतिष्ठा के भूखे नेताओं के प्रति कल्पित सिद्धान्त, विद्वान् समाज के समक्ष कभी भी अपनी सचाई प्रगट करके संसार के कल्याण कर्ता नहीं हो सकते ।

अतः सचाई को प्रगट करने के लिए, मिथ्यात्व और आडम्बर से संसार को बचाए रखने के लिए पुस्तक की शक्ल में यह एक पुस्तिका आप की सेवा में सादर भेंट करते हैं। हमें पूर्ण आशा है कि आप विद्वान् समाज इस को पढ़कर झूठ और सत्य का निर्णय करके झूठ और मिथ्या पाखण्ड का परित्याग करेंगे और सत्य को ग्रहण करके भगवान् महावीर स्वामी के बतलाए हुए सच्चे मार्ग पर चलने की कोशिश करेंगे। हमारा परिश्रम तभी सफल समझा जाएगा यदि आप झूठ का परित्याग कर सत्य को ग्रहण करेंगे।

जैन समाज का सेवक :

१ ११ ५१ किशोरी [illegible] जैन।

स्व० ब० इन्द्रलाल शाह जी के पूज्य पिता ब० चुन्नी
शाह जी।

चित्र परिचय

श्रीमान् जैन समाज भूषण स्व० ल० हरदयाल जी को कौन नहीं मानता? विशेषत: पंजाब का जैन समाज का बच्चा२ इस नाम से भली भान्ति परिचित आप दानवीर सेठ ल० चून्नी शाह जी के सुपुत्र थे। ल० चून्नी शाह जी ने एक महीने तक स्व० श्री श्री १००८ शान्ति के देवता, त्यागमूर्त्ति, गणावच्छेदक, पं० मुनि श्री लाल चन्द जी महाराज की बीमारी पर निज व्यय से बाहिर से आने वाली हजारों की संख्या में संगत का भोजनादि का प्रबन्ध करके अनुपम लाभ लिया था। स्व०ल० हरदयाल शाहजी जैन बिरादरी स्यालकोट के गण्यमान व्यक्ति थे। आप की स्वभाव सरलता तथा दया शीलता उल्लेखनीय है। समाजकार्य में आप हर प्रकार से सहयोग दिया करते थे। आप की उदारता आप के उच्च गौरव का प्रथम स्तम्भ है। आप की अनन्य गुरु भक्ति भी अनुपम ही थी, जिस का जीता जागता प्रमाण यह है कि जब

पं० मुनि जैन भूषण श्री स्वामी प्रेम चन्द जी महाराज वीर जयन्ती के शुभ अवसर पर जम्मू में विराजमान थे, तो अत्याग्रह पूर्वक स्यालकोट में चतुर्मास करने की विनति करते हुए आप ने यह उत्कण्ठा प्रगट की थी कि महाराज श्री स्यालकोट में ही चतुर्मास करने की कृपा करें और दर्शनार्थ बाहिर से आने वाली संगत का भोजन प्रबन्ध केवल हमारी ओर से ही होगा किन्तु निर्दयी काल को ऐसा शुभ अवसर आप का देना मंजूर नहीं था। अर्थात् अनायास ही आप को निर्दयी काल ने ग्रस लिया। आप की इस अचानक मृत्यु से ला० चूनी शाह जी का और जैन बिरादरी स्यालकोट का एक महान् हृदयविदारक दुःख पहुंचा। ऐसा होने पर भी ला० चूनी शाह जी ने हर प्रकार की उत्साह पूर्वक सेवा का चतुर्मास में लाभ उठाया। वास्तव में स्व० ला० हरबंस शाह जी ने जैन बिरादरी पर इतना उपकार किया है जिस का बदला देना स्यालकोटवासी समाज के लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। निवेदक :-

पिशौरी लाल जैन हिन्दी प्रभाकर।

मेरे दो शब्द

(लेखक :—ला० पिशौरी लाल जैन हिन्दी प्रभाकर टीचर जैन माडरण हाई स्कूल स्यालकोट शहर) ।

सज्जनों ! परम प्रतापी, बाल ब्रह्मचारी श्री श्री १००८ स्व० पूज्य **श्री सोहन लाल जी महाराज** के पट्ट को सुशोभित करने वाले, जैन शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान, पंजाब केशरी, वर्तमान आचार्य **पूज्य श्री कांशी राम जी महाराज** के सम्प्रदाय के स्व० **पंजाब कोयल श्री श्री १००८ श्री स्वामी मया राम जी महाराज** के सुशिष्य बाल ब्रह्मचारी स्व० श्री श्री १००८ **श्री स्वामी वृद्धि चन्द्र** जी महाराज के सुशिष्य जैन भूषण, पण्डित मुनि श्री श्री १००८ **श्री स्वामी प्रेम चन्द जी महाराज** का हमारे परम भाग्योदय से इस वर्ष (१९९८)

स्यालकोट में ही चतुर्मास हुआ। यद्यपि महाराज श्री के चौमासे के होने की बहुत कुछ सम्भावना क्षेत्र नहीं में ही थी पर वहां पर चिर काल से विराजित शान्त स्वभावी गणावच्छेदक श्री श्री १००८ श्री स्वामी गोकल चन्द जी महाराज की अति प्रेरणा से और द्रव्य क्षेत्र काल भाव को विचारते हुए महाराज श्री प्रेम चन्द जी ने स्यालकोट की बिरादरी की विनती का ही स्वीकार कर स्यालकोट की जनता को अपने अमृत भरे सरोवर में नहाने का शुभ अवसर दिया।

पूज्य गुरुदेव! आप की विशाल गुणावली का वर्णन करना मेरे जैसे तुच्छ सेवक के लिए असम्भव है। न ही मेरी जिह्वा में इतनी शक्ति है कि आप के गुणों का गान कर सकूं। और न ही मेरी लेखनी में इतनी शक्ति है कि आप के गुणों को लिपि बद्ध कर सकूं तो भी हृदय के उद्गार निकलने स्वाभाविक ही हैं।

व्याख्यान वाचस्पति! आप के व्याख्यान

में अलौकिक आकार्षण शक्ति विद्यमान है, जिस से एक बार भी व्याख्यान सुन लेने पर श्रोता गण मन्त्र मुग्ध हो जाते हैं। जहां बीस २ पच्चीस २ हजार की जनसंख्या में बड़े२ लीडर भी लौडस्पीकर के बिना जनता तक अपनी आवाज नहीं पहुंचा सकते, वहां आप बिना लौड स्पीकर के ही प्रत्येक मानव के हृदय पर अपने व्याख्यान की गहरी छाप मार देते हैं। स्यालकोट में यूनिटी कान्फरेन्स पर राम तलाई में होने वाला भाषण भला किस स्यालकोटी को याद न होगा। और लाहौर जैसे विद्वानों के केन्द्रीय स्थान में भी आप ने सम्पादक मिलाप महाशय खुशहाल चन्द के अति अनुग्रह करने से गुरुदत्त भवन जैसे विशाल पण्डाल में पण्डी पाकिस्तान कान्फरेन्स के अवसर पर ३०, ३५ हजार की जन संख्या की विराट सभा में बिना लौडस्पीकर के ही महावीर स्वामी के कर्मवाद और आस्तिकता के सिद्धान्त को अति मनोहर और ओजस्विनी शब्दों में जनता के सन्मुख रक्खा और डंके की चोट से जनता को

बतला दिया 'कि जैन कट्टर आस्तिक हैं । साथ ही इस विषय को भी भली प्रकार से परिष्कृत करके दर्शा दिया कि भारतवर्ष की सभ्यता हिन्दुत्व की सभ्यता को ही लिए हुए है । यदि भारतवर्षी अपनी हिन्दू सभ्यता का भली प्रकार पालन करें, तो आपस में किसी भी प्रकार का वैर विरोध का कारण नहीं रह सकता । फूट के मुख्य कारण चार ही हैं :– १ धर्मवाद की विषमता । २. शास्त्रों का भेद । ३ ईश्वरवाद का मत भेद । ४ धर्म स्थानों की विषमता । यदि फूट के इन ४ कारणों का उदारता पूर्वक बुद्धिमता से सुलझा लिया जाय, तो फिर पाकिस्तान आदि योजनाओं का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । इन फूट के चार कारणों की गुत्थी को महाराज श्री ने बड़े सरल और भावपूर्ण शब्दों में सुलझाया । इस प्रकार के सार्वजनिक भाषण को सुन कर क्या साधारण और क्या विद्वान सभी जनता अति सन्तुष्ट हुई और अपने मुक्त कण्ठ से भाषण की भूरी २ प्रशंसा भी की।

जाति सुधारक ! आप की भावना सदा

जाति के सुधार की ओर लगी रहती है । आप जैन जाति को पतन से बचा कर उत्थान की ओर लगा रहे हैं । जहा स्थानक वासी जैन समाज मिथ्यात के प्रबल प्रवाह में बही जा रही थी, और लोग मढ़ियों मसानियों आदि से धन दौलत की याचना करते थे वहां आप ने शुद्ध कर्मवाद का उपदेश देकर लोगों की आंखों से अज्ञान का परदा हटा दिया। जिस से जैन समाज पाखण्डियों के के आडम्बर के पंजे से विमुक्त होकर सन्मार्ग की ओर अग्रसर हो रही है ।

ज्ञान निधान ! आप ज्ञान की खान हैं। आप के ज्ञान को सुन कर अनेक मानव वाहिय क्रियाडम्बरों का परित्याग कर शुद्ध अहिंसामय सच्चे जैन धर्म का पालन करने लग गए हैं । सूर्य की रोशनी रात को दिखाई नहीं देती और न ही प्रत्येक जगह पर पहुंच सकती है, पर आप वह सूर्य हैं जो दिन और रात दोनों समय प्रत्येक मानव के हृदय को अपने ज्ञान की किरणों से

प्रकाशित कर रहे हैं।

देश उद्धारक ! आप ने अपने सदुपदेशों में यह बतला दिया है कि शुद्ध राष्ट्रोत्थान क्या वस्तु है। जाति और देश का क्या सम्बन्ध है! जड़ और चेतन में क्या भेद है! यह आप के सदुपदेशों का ही प्रभाव है कि स्यालकोट आदि नगरों में कई पुरुषों ने शराब और मांस का परित्याग कर शुद्ध वीतराग के सच्चे धर्म को अपनाया है और कई नगरों में अब वैजिटेरियन सोसाइटियां स्थापित हो रही हैं।

पूज्यपाद महात्मन ! आप एक अनूठे महात्मा हैं। आप के अमृत भरे उपदेश मानव को सत्य और प्रेम का पाठी बना देते हैं।

प्रेममूर्ते ! जैसा आप का नाम है वैसे ही आप में गुण हैं। आप के ऊपर 'यथा नाम तथा गुण' वाली लोकोक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। पंजाब प्रान्त में भ्रमण कर जहां तहां ऐसे ऐसे जैन सभाओं को स्थापित कर आप ने एक बड़ा

महत्त्व पूर्ण कार्य किया है; जिस से पंजाब प्रान्त में जैन समाज का पुनरुत्थान हो गया है। इस के लिए स्थानकवासी जैन समाज आप की चिर काल तक ऋणी रहेगी।

जैन भूषण! वास्तव में आप एक अलौकिक भूषण हैं। धन्य हैं वह माता और पिता जिन्हों ने आप जैसे नर रत्न को जन्म दिया। भाग्य शाली है वह देश, जहां पर धर्मोपदेश के लिए आप का शुभ विचरण हुआ, अपितु अति भाग्यवान है वह व्यक्ति जिस ने एक बार भी आप के अमृत भरे उपदेश का श्रवण किया। भूषण वस २ कर कम हो जाता है और उस की चमक भी जाती रहती है, पर आप एक ऐसे भूषण हैं जो अधिक २ समय के व्यतीत होने पर भी अधिक देदीप्यमान और कान्ति वाला होता जाता है।

सत्यवक्ता! आप सत्य के अनन्य उपासक हैं। सचाई प्रकट करने में आप जरा भी संकोच नहीं करते। जहां लोग पाखण्ड रचा कर अपने

धर्म का परित्याग करके भी दूसरों को धोका देकर अपने साथ मिलाने का प्रयत्न करते हैं वहां आप सत्य का सिंह नाद बजा कर सत्य के द्वारा ही लोगों को धर्म प्रेमी बना देते हैं।

दयानिधान! आप की नस २ में उदारता और अणु २ में धार्मिक त्याग रूप वीरता विद्यमान है। आप हैं सद्धर्म प्रचारक आप हैं धर्म प्रभावक आप हैं ज्योतिर्मय आप हैं वादिमुखमर्दक आप में हैं कला निरूपण करने की आप में है शक्ति प्राप्त करने की सरलता है पूर आप के चेहरे से बरसती है पीयूषधारा आप के मुखार विन्द से झड़ जाती हैं झड़ी युक्ति और प्रमाणों की जब आप देते हैं व्याख्यान। आप की अलौकिक दिव्य आकृति पर दृष्टिपात होते ही सब के हृदय में भक्ति और प्रेम भावना की तरंगें उछलने लगती हैं दर्शन करत २ तृप्ति नहीं होती विवश हो मुख से यही निकल पड़ता है कि आप सत्यव्रता परम साहसी निर्भीक विरोधक परम पुरुषार्थी बाल ब्रह्मचारी प्रेम मूर्ति दूरदर्शी धीर वीर गम्भीर

और पवित्र साधु जोवी हस्ती हैं।

श्री शासनेश से यही प्रार्थना है कि आप दीर्घ जीवी हों और जनता को सदा अपने पवित्र अमृतोपदेशों से कृतार्थ करते रहें।

आप के चरणों की धूलः--

पिशौरी लाल जैन पसरूरी।

सत्यासत्य निर्णय

मूर्त्तिपूजा निराकरण के विषय में प्रश्नोत्तर

श्री भगवान् महावीर स्वामी जी ने मोक्ष प्राप्ति के मुख्य तीन ही साधन बतलाए हैं –१ सम्यक ज्ञान। २ सम्यक दर्शन। ३ सम्यक चारित्र अर्थात् सच्चा ज्ञान सच्चा श्रद्धान और सच्चा चारित्र।

सम्यक ज्ञान (सच्चा ज्ञान–किस को कहते हैं। यह बात धर्म प्रेमी सज्जनों को विशेष रूप से विचारणीय है। सच्चे ज्ञान का अर्थ है–दुनिया में होते हुए पदार्थों को अपने २ गुण स्वभाव में ठीक रूप से जानना अर्थात् जड़ को जड़ और चेतन को चेतन झूठ को झूठ और सत्य को सत्य धर्म को धर्म और अधर्म को अधर्म पुण्य को पुण्य और पाप को पाप एक इन्द्रिय से लेकर पांच इन्द्रिय तक होने वाली हिंसा को हिंसा और एक इन्द्रिय से लेकर पंच इन्द्रिय तक की की जाने वाली दया को दया, इस प्रकार इन सब चीज़ों को ठीक२ रूप

में जानना ही सम्यक ज्ञान है। और पूर्वोक्त कथन किए हुए पदार्थों को विपरीत रूप से जानना सम्यक् ज्ञान नहीं, अपितु उसे ज्ञान, अविद्या और जहालत समझना चाहिए। जैसे कि अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म, जड को चेतन और चेतन को जड, सच्चे साधुओं को असाधु और एक इन्द्रिय आदि जीव हिंसा में मोक्ष फल की प्राप्ति बतलाने वाले असाधुओं को साधु, बनावटी देव को असली देव मानना, ये सब बातें अज्ञान और मिथ्यात्व रूप ही हैं। ऐसी गलत धारण को जैन शास्त्र अज्ञान मानता है। ज्ञान का अर्थ है जानना अर्थात् ठीक को ठीक और गलत को गलत समझना ही सम्यक ज्ञान है। शास्त्रकारों ने ज्ञानी का लक्षण बतलाया है :—

"एयंखु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं अहिंसा समयं चेव, एत्तावतं वियाणिया"।

इस गाथा का भावार्थ है कि ज्ञानी के ज्ञान का

सार यही है कि किंचित मात्र भी किसी प्राणी को हिंसा न करे, और यदि ज्ञानी होकर हिंसा करता है और दूसरों से करवाता है और करने वालों को अच्छा समझता है तो वह एक प्रकार का अज्ञानी ही है।

प्यारे सज्जनों! जो अपने आप को शास्त्र वेत्ता और पण्डित ज्ञान निधि आदि २ उपाधियों से अलंकृत किए हुए हैं और फिर भी अज्ञानी मूर्ख जीवों की तरह अज्ञानता के कारण जीव हिंसा में धर्म मानता है और दुनिया को हिंसा में धर्म बतलाता है वह बहुत सारे शास्त्र पढ़ लेने पर भी अज्ञानियों में ही गिना जाता है; क्योंकि ज्ञानी वह है जो एक इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक जीव हिंसा में धर्म नहीं मानता है और न ही एक इन्द्रियादि जीव हिंसा में धर्म होने का दूसरों को उपदेश देता है बहुत सारे झूठे मतावलम्बियों का यह कहना है कि एक इन्द्रिय आदि जीवों की देवपूजन आदि धर्मक्रियाओं में जो हिंसा की जाती है वह हिंसा कटुक दुःख रूप फल देने वाली नहीं है किन्तु उस हिंसा का फल सुख रूप शुभ ही

होता है। (प्रमाण के लिए देखिए दण्डी ज्ञान सुन्दर जी कृत **"हां मूर्त्ति पूजा शास्त्रोक्त है"** नाम वाली पुस्तक का पृष्ट ७७)।

प्यारे सज्जनों ! ऐसा खोटा उपदेश देकर हिंसा का फल भी सुख रूप बतलाना यह अज्ञान नहीं तो और क्या है? हिंसा में धर्म न हुआ है, न है, और न होगा। एक जैन पण्डित बनारसी दास ने भी 'समयसार नाटक" नाम के ग्रंथ में इस विषय पर कहा है :—

॥ सवैया ।

"अग्नि मैं जैसे अरविन्द न विलोकियत,
सूरज अथ में जैसे वासर न मानिए।
सांप के वदन जैसे अमृत न उपजत,
ताल कूट खाए जैसे जीवन न मानिए।
कलह करत नहीं पाइए सुजस यस,
बाढत रसास रोग नाश न बखानिए।
प्राण वध हिंसा माहिं, धर्मकी निशानी नाहिं,
याही ते बनारसी विवेक मन आनिए।"

इस सवैये का भावार्थ है कि अग्नि में कमल नहीं उगते सूर्यास्त होने पर दिन का अस्तित्व भाव नहीं रहता क्लेश करने से यश प्राप्त नहीं होता सर्प के मुख से अमृत पैदा नहीं होता ज़हर खाने से जीवन जीवित नहीं रह सकता रत्नोंस के बढ़ने से रोग का नाश नहीं होता। ये असम्भव सी बातें तो सम्भव हो जाएं किन्तु पंच इन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा में धर्म कदापि नहीं हो सकता। शास्त्र में भी कहा है –

"निम्बो न होई इच्छु सारिच्छं,
इच्छु न होई निम्बोसारिच्छं।
हिंसा न होई सुख,
नहु दु खं अभय दाणेणं।"

इस गाथा का भावार्थ है कि कटुक स्वभाव वाली नीम मीठी नहीं [illegible] सकती और जो मधुर स्वभाव वाला मीठा है वह नीम की तरह कटुक नहीं हो सकता ऐसे ही दु ख देन वाली हिंसा से

सुख नहीं हो सकता, और सुखदाता अभय दान रूप दया से किसी भी प्राणी को दुःख नहीं हो सकता। इस गाथा का साराश रूप भाव यह निकला कि हिंसा से कभी भी सुख नहीं हो सकता। भगवान् महावीर स्वामी जी ने दशवैकालिक सूत्र में भी फरमाया है :-

"सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीविउं, नमरिज्जिउं, तम्हा पाणिवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंतिणं"।

इस गाथा का भावार्थ है कि सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नही चाहता है, इस लिए साधु आत्मार्थ प्राण वध रूप हिंसा का सर्वथा त्याग करें और जो साधु नाम धराकर मूर्त्ति पूजनादि के निमित्त की गई हिंसा का फल सुख रूप बतलाते हैं और उस हिंसा को भगवान की आज्ञा संयुक्त कहते हैं। उन का यह कहना बिल्कुल मिथ्या है, क्योंकि हिंसा तो हर अवस्था में हिंसा ही मानी जायगी, चाहे वह किसी भी क्रिया के लिए क्यों न

की जाए। जिस तरह पंच इन्द्रिय जीव भेड़ बकरी कुत्ता भैंसादि की बली को देवी देवता के नाम पर देने वालों को पापी अधर्मी और हिंसक समझा जाता है। इसी प्रकार की देव पूजनादि के निमित्त एक इन्द्रिय आदि जीवों की की गई हिंसा भी पाप से खाली नहीं मानी जा सकती। यदि पंच इन्द्रिय को अपनी जान प्यारी है, तो एक इन्द्रिय जीव को भी अपनी जान प्यारी है। क्रोड़पति का करोड़ लखपति को लाख हजार वाले का हजार, दस वाले को दस और एक वाले का एक अपने २ रुपये प्यारे हैं। इस तरह से पंच इन्द्रिय चार इन्द्रिय तीन इन्द्रिय दो इन्द्रिय और एक इन्द्रिय आदि जीवों को भी अपने २ प्राण रूप धन प्यारा है। करोड़ रुपए की चोरी करने वाले को भी चोर लाख हजार, दस व एक रुपए की चोरी करने वाले को भी चोर ही कहा जाता है। इसी प्रकार पंच इन्द्रिय से ले कर एक इन्द्रिय तक के जीवों के प्राणों को किसी भी कार्य के लिए लूटने वाले को उन जीवों का हिंसक ही कहा जाता है।

एक बात और भी आप सज्जनों के सामने रक्खी जाती है कि एक राज पुत्र है, एक वजीर का, एक तहसीलदार का, एक ठानेदार का, और एक गरीब से गरीब मनुष्य का है। अगर राजा की प्रजा में से कोई मानव इन निर्दोष लड़कों को राजा के लिए मार कर न्यायदाता राजन् को प्रसन्न करना चाहे, तो क्या राजा उस मानव से प्रसन्न होगा ? उत्तर है "नहीं"। इसी तरह दयालु, कृपालु, पूर्ण अहिंसक तीर्थंकर देव जो हैं, उन के निमित्त की गई हिंसा से न ही वे संतुष्ट हो सकते हैं और न ही उन के निमित्त की गई हिंसा में धर्म हो सकता है।

प्यारे सज्जनों! भगवान् एक प्रकार के धर्म रूपी देवाधि देव राजा हैं, और एक इन्द्रिय से लेकर पंच इन्द्रिय तक के जीव ये उन की प्रजा हैं। इन जीवों की हिंसा से कभी भगवान् सन्तुष्ट नहीं हो सकते, और न ही उन के निमित्त की गई हिंसा में पुण्य या धर्म हो सकता है।

प्रश्न :—क्या मूर्त्ति पूजा प्रमाणिक जैन शास्त्रों से सिद्ध है?

उत्तर :—नहीं ।

प्र० :—कौन से शास्त्र में निषेध है ?

उ० :—सूत्र श्री दशवैकालिक जी के सातवें अध्ययन की पाँचवीं गाथा में लिखा है :—

"वितहं पी तहा मुर्त्ति, जं गिर भासए नरो तम्हा सो पुट्ठो पावेणं, किं पुण जो मुस वए" ।

इस गाथा का भावार्थ है 'जो गुण रहित मूर्ति को तथा रूप गुणवाली मूर्ति कहता है उसका कहने मात्र से ही वह नर पाप कर्म का भागी बनता है ।'

प्रिय सज्जनों ! जब इस गाथा के अनुसार गुण रहित मूर्ति को तथा रूप गुण वाली मूर्ति कहने मात्र से ही पाप कर्म का बन्ध होता है तो पाषाण (पाषाण) आदि की निर्गुण मूर्ति की फल फूल द्वारा आरम्भ समारम्भ करके पूजा करने वाले का तो न मालूम कितने महान पाप कर्म का बन्ध होता होगा ।

बहुत सारे जड़ मूर्त्ति पूजक जैन धर्मावलम्बियों का कहना है, "कि जितने गुण सिद्धात्माओं में हैं, उतने ही गुण उन की पत्थर आदि की बनाई हुई जड़ मूर्त्ति में हैं। (इस के प्रमाण के लिए देखिए दण्डी ज्ञान सुन्दर जी कृत **"हां मूर्त्ति पूजा शास्त्रोक्त है"** । नाम वाली पुस्तक का पृष्ट १०) जिस प्रकार जड़ मूर्त्ति में सिद्धों के बराबर गुण बतलाए हैं, इन की धारणानुसार उसी प्रकार अरिहृत, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि की कल्पित मूर्त्ति में भी अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि में होने वाले गुण भी ये लोग बराबर ही मानते होंगे। प्यारे सज्जनों! यह कितनी हास्य-प्रद और अज्ञानता सूचक बात है! कि जितने गुण केवल ज्ञान, केवल दर्शन, संयुक्त जन्म मरण से रहित, सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, सच्चिदानन्द, सिद्ध परमात्मा में हैं, उतने ही गुण इन की नकली बनाई हुई एक जड़ मूर्त्ति में हैं। इस से यही सिद्ध हुआ कि एक घड़ के तय्यार किया हुआ, किसी विशेष आकृति वाला पत्थर और सिद्ध, बुद्ध, अजर,

उत्तर :—नहीं ।

प्र० :—कौन से शास्त्र में निषेध है ?

उ० :—सूत्र श्री दशवैकालिक जी के सातव अध्ययन की पांचवी गाथा में लिखा है :—

"वितहं पी तहा मुर्त्ति, जं गिर भासए नरो तम्हा सो पुट्ठो पावेणं, किं पुण जो मुस वए" ।

इस गाथा का भावार्थ है 'जो गुण रहित मूर्ति को तथा रूप गुणवाली मूर्ति कहता है इतना कहने मात्र से ही वह नर पाप कर्म का भागी बनता है ।

प्रिय सज्जनों ! अब इस गाथा के अनुसार गुण रहित मूर्ति को तथा रूप गुण वाली मूर्ति कहने मात्र से ही पाप कर्म का बन्ध होता है तो पैषाण (पाषाण) आदि की निर्गुण मूर्ति की फल फूल द्वारा आरम्भ समारम्भ करके पूजा करने वाले का तो न मालूम कितने महान पाप कर्म का बन्ध होता होगा ।

पशु पक्षियों को भी असल और नक़ल का ज्ञान है और वे असल को छोड़ कर कभी भी नक़ल को नहीं अपनाते, जैसे कि बिल्ली बनावटी तोते पर कभी भी आक्रमण नहीं करती। बच्चे बनावटी रबड़ के सर्प से नहीं डरते। मनुष्य और पशु आदि नक़ली बनाई हुई शेर की आकृति को देख कर उस से कभी भी भयभीत नहीं होते, क्योंकि वे समझते हैं कि यह शेर नक़ली है, असली नहीं। भाइयो! हमें उन जड़ मूर्ति पूजक जैनों की बुद्धि पर बड़ा शोक प्रकट करना पड़ता है कि पशु पक्षियों को तो असली और नक़ली का ज्ञान है, किन्तु उन्हें असल और नक़ल का स्वप्नान्तर में भी ज्ञान नहीं। ऐसे अज्ञानियों से तो किसी अंश में पशु पक्षी ही बुद्धिशील हैं, जो असल और नक़ल का ज्ञान रखते हैं, और नक़ल को छोड़ कर असल को ही अपनाते हैं। बनावटी जड़ देव से कभी भी असली देव के द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान, ध्यान आदि गुण प्राप्त नहीं हो सकते।

प्रश्नः—आप ने कहा है कि असली और

समान परम पवित्र सर्वगुणालंकृत सिद्ध परमात्मा बराबर ही है। धन्य है इन जड़ मूर्ति पूजक जैन उपासकों की बुद्धि को। जिन्होंने एक पाषाणादि को जड़ मूर्ति और सिद्ध परमात्मा को एक समान ही ठहराया है। यही तो इन के सम्यक् ज्ञान का एक सजीवित प्रमाण है। क्या ही माना दुनिया के आगे नग्न और ताण्डव नृत्य का ढकोसला रच कर सन्मार्ग पर चलने वाली दुनिया को पतित करने का रास्ता अपनाया है। अगर एक स्त्री पति के मर जाने पर अपने पति देव की मूर्ति बनाकर उस मूर्ति से अपना पति सौभाग्य बनाए रखना चाहे तो क्या वह उस मूर्ति से अपने पति सौभाग्य का कायम रख कर सधवा कहला सकती है? उत्तर स्पष्ट है नहीं"।

प्रश्न —क्यों साहिब! वह स्त्री पति की मूर्ति पास होने पर भी पति सौभाग्यवती क्यों नहीं कहला सकती?

उत्तर —क्योंकि उस नकली मूर्ति में पति में होने वाले शूर वीर और कुटुम्ब रक्षा ऐसा

पशु पक्षियों को भी असल और नक़ल का ज्ञान है और ये असल को छोड़ कर कभी भी नक़ल को नहीं अपनाते, जैसे कि बिल्ली बनावटी तोते पर कभी भी आक्रमण नहीं करती। बच्चे बनावटी रबड़ के सर्प से नहीं डरते। मनुष्य और पशु आदि नक़ली बनाई हुई शेर की आकृति को देख कर उस से कभी भी भयभीत नहीं होते, क्योंकि वे समझते हैं कि यह शेर नक़ली है, असली नहीं। भाइयो! हमें उन जड़ मूर्त्ति पूजक जैनों की बुद्धि पर बड़ा शोक प्रकट करना पड़ता है कि पशु पक्षियों को तो असली और नक़ली का ज्ञान है, किन्तु उन्हें असल और नक़ल का स्वप्नान्तर में भी ज्ञान नहीं। ऐसे अज्ञानियों से तो किसी अंश में पशु पक्षी ही बुद्धिशील हैं, जो असल और नक़ल का ज्ञान रखते हैं, और नक़ल को छोड़ कर असल को ही अपनाते हैं। बनावटी जड़ देव से कभी भी असली देव के द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान, ध्यान आदि गुण प्राप्त नहीं हो सकते।

प्रश्नः—आप ने कहा है कि असली और

नक़ली का पशु पक्षी भी ज्ञान रखते हैं जैसे कि बिल्ली नक़ली तोते पर आक्रमण नहीं करती यदि ऐसा ही है तो बनावटी कागज़ की हथिनी पर मदोन्मत्त हाथी आक्रमण क्यों करता है?

उत्तरः—वह पशु रूप हाथी कामान्ध है। वह कामाग्नि से विह्वल होने पर एक प्रकार का आँखें रखने पर भी अन्धा हो है। इस विषय पर एक कवि ने भी क्या ही अच्छा कहा है –

'काम क्रोध मद आलसी शिशु त्रिया मदराग
होत स्याना बावला आठ ठौर चित भाग'।

इस दोहे के भाव से स्पष्ट सिद्ध हो गया कि कामांध जीव एक प्रकार का अन्धा हो जाता है।

शंका:—कभी कुछ भी हो पर मदोन्मत्त हाथी ने नक़ली हथिनी पर आक्रमण तो किया।

शंका का समाधानः—फिर इससे फल भी क्या हुआ, आख़िर नक़ली हथिनी को वास्तविक हथिनी समझ कर उस पर आक्रमण करने से गड्ढे में गिर कर भूखे प्यासे रह कर हाथी को पूरी तरह प्राण

और जाति सेवा आदि गुण नहीं हैं, और न हो उस नकली फोटो से सन्तान प्राप्ति हो सकती है। बस, अगर फोटो या पति की मूर्ति से कोई स्त्री अपने को सौभाग्यवती नहीं कहला सकती, और न ही उस नक़ली मूर्ति या फोटो से सन्तान फल प्राप्ति कर सकती है, तो समझ लो कि तीर्थंकरों की बनावटी मूर्ति भी हमें ज्ञान, ध्यान, आत्म विचार और मोक्ष सुख प्राप्ति रूप फल नहीं दे सकती।

प्र०—क्या मूर्ति देखने मात्र से हमारे में सिद्ध या अरिहन्तों के गुण आ सकते हैं ?

उत्तर.—नहीं। जिस तरह एक बनावटी नक़ली आम को देख कर उस को असली आम की कल्पना कर लेने से असली आम के रस की प्राप्ति नहीं हो सकती, और न ही गुलाबादि के बनावटी फूल को देख कर असली गुलाब के फूल से आने वाली सुगंध उस नकली फूल में से आ सकती है। अगर नकल में असल वस्तु के गुण आ जाएं तो उसे नकली ही क्यों कहा जाए, इस का कारण यही तो

है कि नक़ली में असली के गुण नहीं हैं। प्यारे सज्जनों! यदि आत्म कल्याण चाहते हो और सच्चे देव गुरु की सेवा करके मोक्ष प्राप्ति चाहते हो तो असली और नक़ली की पहचान करो। अगर मनुष्य जन्म को पा कर असल और नक़ल का ज्ञान प्राप्त न किया तो बड़े दु:ख से कहना पड़ता है कि उस ज्ञान विहीन मनुष्य में और पशु में कोई विशेष फ़रक़ नहीं है। प्रिय सुज्ञ पुरुषो! पशुओं को भी असल और नक़ल का ज्ञान होता है। देखिए! भँवरा असली गुलाब के फूल को छोड़ कर कभी भी बनाए हुए नक़ली गुलाब के फूल पर नहीं बैठता क्यों कि वह जानता है कि इस नक़ली फूल में जिस सुगन्धित पुष्प से मैं प्रेम रखता हूं वह सुगन्ध इस में नहीं है।

पक्षी भी अगर उन के असली अण्डे की जगह नक़ली अण्डा हूबहू वैसा आकार और रंग रूप का बना कर रख दिया जाए तो वे उस नक़ली अण्डे का पालन भूल कर भी नहीं करते क्योंकि वे समझते हैं कि ये अण्डे बेजान और नक़ली हैं। खेद है कि

देने पड़े, अथवा बन्धन में पड़ कर बन्धी होना पड़ा। उन हाथी की तो कामाग्नि की विह्वलता से सुध, बुद्ध ठिकाने नहीं थी, क्या मूर्ति पूजक जैनों की भी सुध बुद्ध ठिकाने नहीं है? जो कल्पित देव से मोक्ष फल की प्राप्ति चाहिते हैं। जो कल्पित जड़ तीर्थंकर मूर्ति को असली देव बुद्धि से पूजते हैं, उन्हे भी मिथ्यात रूप गढे में पड़ कर ससार में जन्म मरण रूप दुःख उठाने पड़ेगे। अब तो आप अच्छी तरह समझ गए होंगे, कि नकली में असली की कल्पना करने से हाथी की तरह कैसी दुर्दशा होती है।

प्रश्नकर्ता का उत्तर—अभी मैं खूब अच्छी तरह समझ चुका हूं कि नकली में असली वस्तु भावी गुण प्राप्त नहीं हो सकता, और मैं तो आज से ही जडोपासना को त्यागता हूं और चौन्तीस अतिशय, पैन्तीस वाणी गुण सयुक्त चेतन भावी अरिहत देव को ही देव मानूंगा। इस विषय में किसी कवि ने भी कहा है:—॥ सवैया ॥

हालत न रस ना मुख माही,
भोग प्रसाद का कैसे लगाऊं।

नासिका का सुर याजत नाहीं
फूल सुगंध मैं कैसे सुंघाऊं ।
कानों में फूक वाकी न सुनें
ताको मैं ताल मैं कैसे रिझाऊं ।
रूपराम कहे तुम सुनो चतुर नर
ऐसे देवन को मैं कैसे ध्याऊं ।

बस इस सवैये से भी यही सिद्ध हुआ कि जब जड़ मूर्ति न खा सकती है और न ही सूंघ सकती है तो फलादि का भोग लगाना फूलादि चढ़ाना अनेक प्रकार के वादित्र बजाना व्यर्थ ही है जैसे कि मुर्दे के मुख में माखन डालना और उस की नासिका को फूल सुंघाना और कानों के पास अनेक प्रकार के गाने गाना अनेक तरह के घंटे घड़ियाल और वादित्र का बजाना व्यर्थ है वैसे ही एक जिनेन्द्र देव की बनावटी मूर्ति बनाकर उसे भोग लगाना निर्वाण लड्डू चढ़ाना उस के आगे फूलों का ढेर लगाना घंटे घड़ियाल बजाना सब व्यर्थ ही है। जैसे कोई भी कानों से बहरा लोगों में अन्धा पति पाकर उसके आगे १६ प्रकार

का हार शृङ्गार करके उसे दिखलावे, तो देखे कौन? और मनोरंजक अनेक प्रकार के गीत सुनावे, तो सुने कौन? क्योंकि पति देव तो अन्धे और बहरे हैं। अन्धे और बहरे पति के आगे शृङ्गार दिखाने वाली और राग गाने वाली स्त्री को लोग देख कर मूर्ख ही कहेंगे। इसी तरह तीर्थंकर की जड़ मूर्त्ति के आगे मुकुट और घुंघरू आदि पहनकर विभूषित होना और नाचना और राग रंग जड़ मूर्त्ति के आगे गाना मूर्खता सूचक नहीं तो और क्या है?

प्रश्नः—क्या पत्थर की गाय से दूध प्राप्ति की पूर्त्ति हो सकती है?

उत्तर—नहीं, क्योंकि वह नकली गाय बनावटी है। जब वह घास और अन्न आदि की खुराक नहीं ले सकती, तो वह नकली गाय बिना खुराक के लिए दूध भी नहीं दे सकती, और न ही कोई बुद्धिमान मनुष्य उस नकली बनाई हुई गौ के आगे घास और अन्नादि की खुराक रखता है। अगर कोई पत्थर आदि की बनावटी गौ के आगे घासादि खुराक डाले, तो देखने वाले उस मनुष्य को मूर्ख

ही कहेंगे। इसी तरह लकड़ी जिनेन्द्र देव की बनावटी मूर्ति से भी ज्ञान ध्यान मोक्ष प्राप्ति आदि सुख रूप फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस तरह लकड़ी गौ के आगे घासादि डालने वाले मनुष्य को मूर्ख समझा जाता है उसी तरह लकड़ी मूर्ति के आगे फल फूल चढ़ाना भी तो अज्ञानता का ही सूचक है।

प्रश्न –प्रतिमा को तो एक कारीगर बनाता है यदि कारीगर द्वारा बनाई गई प्रतिमा पूजनीय हो सकती है तो क्या प्रतिमा के बनाने वाला कारीगर पूजनीय नहीं हो सकता?

उत्तर –हां, अगर वह कारीगर सत्य, शील सन्तोष, मान निवृत्ति रूप प्रवृत्ति मार्ग को त्याग कर निवृत्ति मार्ग को धारण कर ले, तो वह पूजनीय हो सकता है, क्योंकि वह चेतन है। वह सत्य नियमादि गुण विशेष को धारण कर सकता है और मूर्ति जड़ होने से तप संयमादि गुणों को धारण नहीं कर सकती अतः वह मूर्ति कभी भी पूजनीय नहीं हो सकती। क्योंकि पूजा गुण की

ही होती है। एक पुजारी होता है और एक पूज्य होता है। पुजारी होता है पूजा करने वाला, पूज्य होता है जिस की पूजा की जाए, पूजा करने वाले पुजारी से पूजा कराने वाले पूज्य में गुण विशेष होने चाहिए। पूजा करने वाला पूज्य की इसी लिए पूजा करता है कि पूज्य में पुजारी से गुण अधिक होते है। लड़के को वही मास्टर विद्या दे सकेगा, जो लड़के से अधिक विद्वान होगा। अगर अध्यापक विद्यार्थी से विद्या में कम या बराबर हो, तो भी विद्यार्थी को उस अध्यापक से विद्या प्राप्ति नहीं हो सकती। प्यारे सज्जनों! कितनी हास्यप्रद और विचारणीय बात है कि मूर्त्ति रूप पूज्य तो जड़ है अर्थात् ज्ञान, ध्यान विवेक से शून्य है, और उसे पूजने वाला पुजारी मनुष्य विशेष चेतन है, जो ज्ञान, ध्यान, व्रत संयम आदि नियमों का पालन कर सकता है। ऐसा गुणशील मानव उस निर्गुण मूर्त्ति से क्या प्राप्त कर सकता है? अर्थात् मिथ्यात्व पोषण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

ही कहेंगे। इसी तरह नकली जिनेन्द्र देव की बनावटी मूर्ति से भी ज्ञान ध्यान मोक्ष प्राप्ति आदि सुख रूप वृक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस तरह नकली गौ के आगे घासादि डालने वाले मनुष्य को मूर्ख समझा जाता है उसी तरह नकली मूर्ति के आगे फल पुष्प चढ़ाना भी तो अज्ञानता का ही सूचक है।

प्रश्न —प्रतिमा को तो एक कारीगर बनाता है यदि कारीगर द्वारा बनाई गई प्रतिमा पूजनीय हो सकती है तो क्या प्रतिमा के बनाने वाला कारीगर पूजनीय नहीं हो सकता?

उत्तर —हाँ, अगर वह कारीगर सत्य, शील सन्तोष, मान निवृत्ति रूप प्रवृत्ति मार्ग को त्याग कर निवृत्ति मार्ग को धारण कर ले, तो वह पूजनीय हो सकता है, क्योंकि वह चेतन है। वह सत्य नियमादि गुण विशेष को धारण कर सकता है, और मूर्ति जड़ होने से तप संयमादि गुणों को धारण नहीं कर सकती, अतः वह मूर्ति कभी भी पूजनीय नहीं हो सकती। क्योंकि पूजा गुण की

ही होती है। एक पुजारी होता है और एक पूज्य होता है। पुजारी होता है पूजा करने वाला, पूज्य होता है जिस की पूजा की जाए, पूजा करने वाले पुजारी से पूजा कराने वाले पूज्य में गुण विशेष होने चाहिए। पूजा करने वाला पूज्य की इसी लिए पूजा करता है कि पूज्य में पुजारी से गुण अधिक होते हैं। लड़के को वही मास्टर विद्या दे सकेगा, जो लड़के से अधिक विद्वान होगा। अगर अध्यापक विद्यार्थी से विद्या में कम या बराबर हो, तो भी विद्यार्थी को उस अध्यापक से विद्या प्राप्ति नहीं हो सकती। प्यारे सज्जनों! कितनी हास्यप्रद और विचारणीय बात है कि मूर्ति रूप पूज्य तो जड़ है अर्थात् ज्ञान, ध्यान विवेक से शून्य है, और उसे पूजने वाला पुजारी मनुष्य विशेष चेतन है, जो ज्ञान, ध्यान, व्रत संयम आदि नियमों का पालन कर सकता है। ऐसा गुणशील मानव उस निर्गुण मूर्ति से क्या प्राप्त कर सकता है? अर्थात मिथ्यात पोषण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

प्रश्न :—अजी मूर्ति देखने से ध्यान जम जाता है, इस लिए मूर्ति के दर्शन करने पर आवश्यक क्यों नहीं है ?

उत्तर —प्रिय मित्र ! यह बात भी निर्मूल और भ्रान्ति जनक ही है, क्योंकि शास्त्रकारों ने ध्यान के विषय में ध्यान, ध्याता और ध्येय ये तीन रूप बतलाए हैं। ध्यान तो मन की एकाग्रता ध्याता आत्मा और ध्येय जिस का ध्यान लगाया जाय (जो ध्यान का ग्राह्य विषय है) ध्याता को जैसा बनना होता है उसे वैसा ही ध्येय अपनाना होता है। जैसे किसी मनुष्य को देहली जाना है तो उसे अपना ध्येय देहली ही बनाना होगा, तब ही वह देहली पहुंच सकेगा। यदि ध्येय तो देहली जाने का हो पर है काश्मीर की ओर, तो वह देहली कदापि नहीं पहुंच सकता बल्कि जितने कदम काश्मीर की ओर उठाता है उतना ही वह अपने ध्येय रूप देहली से दूर होता जा रहा है। इसी तरह जो व्यक्ति तीर्थंकर देव के गुण विशेष अपने में धारण

करना चाहता है, उसे साक्षात चौन्तीस अतिशय पैन्तीस वाणी गुण संयुक्त अठारह (१८) दूषणों से रहित असली अरिहन्त देव का ही ध्यान करना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि गुण तो अरिहन्तों वाले चाहें, और ध्येय रूप पत्थरादि की जड मूर्ति को अपनाएं। इस का मतलब तो यही होगा, कि अगर जड मूर्ति को ध्येय बनाएंगे तो ध्याता की बुद्धि भी जड मूर्ति रूप ध्येय के सदृश जड ही हो जाएगी, बस मूर्ति देख कर ध्यान जमने का विचार भी गलत ही ठहरा।

प्रश्न.–मूर्ति को तो हम जड ही मानते हैं, किन्तु हम अपने भावों से जड मूर्ति में चेतनभावी तीर्थंकरों की स्थापना कर लेते हैं, अत: हमें तीर्थंकर भावी गुणों की जड मूर्ति से प्राप्ति हो जाती है। तो फिर भाई साहिब आपके इस विषय में क्या विचार हैं?

उत्तर –वाह जी वाह खूब कही! यह तो ऐसा ही हुआ, जैसे किसी स्त्री का पति चल बसा और पति के मृतक शरीर को देख कर उस

प्रश्न —अच्छी मूर्ति देखने से ध्यान जम जाता है, इस लिए मूर्ति के दर्शन करने पर आवश्यक क्यों नहीं है?

उत्तर —प्रिय मित्र! यह बात भी निर्मूल और भ्रान्ति जनक ही है, क्योंकि शास्त्रकारों ने ध्यान के विषय में ध्यान, ध्याता और ध्येय ये तीन रूप बतलाए हैं। ध्यान तो मन की एकाग्रता, ध्याता, आत्मा और ध्येय जिस का ध्यान लगाया जाए (जो ध्यान का ग्राह्य विषय है) ध्याता को जैसा बनना होता है उसे वैसा ही ध्येय अपनाना होता है। जैसे किसी मनुष्य को देहली जाना है, तो उसे अपना ध्येय देहली ही बनाना होगा, तब तो वह देहली पहुंच सकेगा। यदि ध्येय तो देहली जाने का हो चल दे काश्मीर की ओर, तो वह देहली कदापि नहीं पहुंच सकता, बल्कि जितने कदम काश्मीर की ओर बढ़ाता है, उतना ही वह अपने ध्येय रूप देहली से दूर होता जा रहा है। इसी तरह जो व्यक्ति तीर्थंकर देव के गुण विशेष अपने में धारण

जाता है। अगर ध्यानकर्ता का ध्यान अरिहन्तदेव के गुण विशेष में चला जाता है, तो उस समय मूर्ति में ध्यान नहीं होता, और अगर मूर्ति का ध्यान है, तो अरिहन्त देव के गुण विशेष में ध्यान नहो हो सकता।~ . (या तो अरिहन्तों का ही ध्यान कर लो, या जड मूर्ति का) टट्टी की ओट में शिकार नहीं खेलना चाहिए। ध्यान तो किया जाये जड मूर्ति का और गुण प्राप्ति चाहो अरिहन्तों के गुण विशेष की। यह बात कदापि नहीं हो सकती। बस, अब तो आप को समझ में अच्छी तरह ध्यान का मतलब आ गया होगा। अगर इतना स्पष्ट रूप से समझाने पर भी जड मूर्ति का पीछा न छोडा, तो इस में कारण रूप मिथ्यात्व की प्रबलता ही मानी जाएगी, और भगवान् महावीर ने भी मिथ्यात से ही छुटकारा पाना कठिन बतलाया है, जैसे कि श्री उत्तराध्ययन शास्त्र में कहा है, "सद्धापरम दुल्लहा" अर्थात सच्चे देव, गुरु धर्म की श्रद्धा का होना ही जीवात्मा को अनादि काल से अति दुर्लभ है, इस के बिना जीव

निर्जीव शरीर में पति के सजीवपने की कल्पना करके यह भी कहे कि अब मुझे निर्जीव पति के शरीर में सजीव पति भाव प्राप्त हो गया है तो क्या उस मृतक पति शरीर में सजीवित पति भाव आ जायगा, और पति से होने वाले गृह काम, और पति सौभाग्य व संतान प्राप्ति हो जायगी? कदापि नहीं। अगर मृतक पति शरीर में जिन्दे पति की कल्पना करने से जीवित पतिभाव प्राप्त नहीं हो सकता है तो समझो जड़ मूर्ति में भी अरिहन्त देव के सद् भाव की कल्पना करने से वास्तविक अरिहन्त भाव नहीं आ सकता और न ही अरिहन्त देव वाले गुणों की प्राप्ति हो सकती है और जिन जड़ मूर्ति पूजकों का यह अन्ध विश्वास है कि मूर्ति देखने से अरिहन्त में ठीक २ ध्यान जम जाता है यह बात भी मिथ्या है क्योंकि एक समय में दो काम नहीं हो सकते यदि कोई व्यक्ति सन्मुख मूर्ति रख कर अगर उस मूर्ति के ही अगोपांग और मुकटादि का निरीक्षण करता है तो उस का ध्यान इन्हीं चीज़ों तक परिमित रह

जाता है। अगर ध्यानकर्ता का ध्यान अरिहन्तदेव के गुण विशेष में चला जाता है, तो उस समय मूर्त्ति में ध्यान नहीं होता, और अगर मूर्त्ति का ध्यान है, तो अरिहन्त देव के गुण विशेष में ध्यान नहीं हो सकता।— . (या तो अरिहन्तों का ही ध्यान कर लो, या जड मूर्त्ति का) टट्टी की ओट मे शिकार नहीं खेलना चाहिए। ध्यान तो किया जाये जड मूर्त्ति का और गुण प्राप्ति चाहो अरिहन्तों के गुण विशेष की। यह बात कदापि नहीं हो सकती। बस, अब तो आप की समझ मे अच्छी तरह ध्यान का मतलब आ गया होगा। अगर इतना स्पष्ट रूप ■ समझाने पर भी जड मूर्त्ति का पीछा न छोड़ा, तो इस में कारण रूप मिथ्यात्व की प्रबलता ही मानी जावगी, और भगवान् महावीर ने भी मिथ्यात्व से ही छुटकारा पाना कठिन बतलाया है, जैसे कि श्री उत्तराध्ययान शास्त्र में कहा है, "सद्धापरम दुल्लहा" अर्थात् सच्चे देव, गुरु धर्म की श्रद्धा का होना ही जीवात्मा को अनादि काल से अति दुर्लभ है, इस के बिना जीव

संसार रूपी समुद्र में गोते खाता चला आ रहा है बन्धुओ! यदि कल्याण चाहते हो, तो सच्चे देव गुरु धर्म को अपनाओ। हठ छोड़ देना ही सुख का कारण है। अगर हठ नहीं छोड़ोगे तो गधे के दुःखों से पीड़ित एक लड़के जैसा ही हाल होगा एक लड़का खेल में ज्यादा चित्त लगाने से अपना पाठ याद नहीं करता था। माता ने उसे कहा, कि जिस चीज़ को पकड़ ले वह छूट नहीं जा सकती! पकड़ी हुई चीज़ को छोड़ना नहीं चाहिए, अर्थात् (लिए हुए पाठ को छोड़ना नहीं चाहिए)। उस मूर्ख लड़के ने अगले दिन एक गधे की पूंछ पकड़ ली, बस फिर क्या था! अम्बकर्ण देवता ने दोलत्तों की पुछाड़ पर पुछाड़ लगानी शुरू की। परिणाम यह हुआ कि लड़का मूर्छित होकर गिर पड़ा। पता लगने पर माता घर पर उठा ले गई। लड़के को दो तीन महीने के बाद आराम होने पर पूछा 'कि तू ने गधे की पूंछ क्यों पकड़ी जिस से यह हाल हुआ। मूर्ख लड़के ने उत्तर दिया 'तुम ने ही तो कहा था कि जिस चीज़ को पकड़ ले उसे

छोड़ना नहीं चाहिए।" माता अपने दुर्भाग्य को धिक्कारती हुई सिर पर हाथ मार कर बोली, "अरे मूर्ख ! मैं ने गधे की पूंछ पकड़ने को थोड़ा कहा था मैं ने तो लिए हुए पाठ को याद करने के लिए कहा था"।

प्यारे सज्जनों ! कल्पित पाषाणादि की मूर्त्ति को अरिहन्त देव मानना और संयम मार्ग से पतित, धाचार भ्रष्ट व्यक्ति को गुरु मानना और एक इन्द्रियादि जीवों की हिंसा करके धर्म मानना, ये एक प्रकार से मिथ्यात्व रूप गधे की पूछ पकड़ना ही हैं। संसार भ्रमण रूप मिथ्यात्व के फल को जानते हुए भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्म रूप गधे की पूछ का न छोड़ना यह बात हठ नहीं तो और क्या है ? सारांश यह निकला कि मूर्त्ति पूजन से मिथ्यात्व पोषण के अतिरिक्त और कुछ भी गुण विशेष रूप लाभ नहीं है, और मूर्त्ति पूजकों के मान हुए कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेम चन्द्र सूरि जी भी मन्दिर विषय में लिखते हैं (देखिए योग शास्त्र द्वितीय प्रकाश पृष्ठ ११६ गाथा एक सौ इक्कीसवी

संसार रूपी समुद्र में गोते खाता चला आ रहा है बन्धुओ! यदि कल्याण चाहिते हो तो सच्चे देव गुरु धर्म को अपनाओ। हठ छोड़ देना ही सुख का कारण है। अगर हठ नहीं छोड़ोगे तो गधे के दुलत्तों से पीड़ित एक लड़के जैसा ही हाल होगा। एक लड़का काम में ध्यान चित्त लगाने से अपना पाठ याद नहीं करता था। माता ने उसे कहा, कि जिस चीज को पकड़ ले वह कैसे नहीं आ सकती। पकड़ी हुई चीज को छोड़ना नहीं चाहिए, अर्थात् (लिए हुए पाठ को छोड़ना नहीं चाहिए)'। उस मूर्ख लड़के ने अगले दिन एक गधे की पूंछ पकड़ ली बस फिर क्या था! कम्बख्त गधे ने दोलत्तों की बुछाड़ पर बुछाड़ लगानी शुरू की। परिणाम यह हुआ कि लड़का मूर्छित होकर गिर पड़ा। पता लगने पर माता घर पर ले गई। लड़के को दो तीन महीने के बाद आराम होने पर पूछा 'कि तू ने गधे की पूंछ क्यों पकड़ी जिस से यह हाल हुआ।" मूर्ख लड़के ने उत्तर दिया 'तुम ने ही तो कहा था कि जिस चीज को पकड़ ले उसे

छोडना नहीं चाहिए।" माता अपने दुर्भाग्य को धिक्कारती हुई सिर पर हाथ मार कर बोली, 'अरे मूर्ख! मैं ने गधे की पूंछ पकड़ने को थोडा कहा था मैं ने तो लिए हुए पाठ को याद करने के लिए कहा था"।

प्यारे सज्जनों! कल्पित पाषाणादि की मूर्ति को अरिहन्त देव मानना और संयम मार्ग से पतित आचार भ्रष्ट व्यक्ति को गुरु मानना और एक इन्द्रियादि जीवों की हिंसा करके धर्म मानना, ये एक प्रकार से मिथ्यात रूप गधे की पूछ पकड़ना ही है। संसार भ्रमण रूप मिथ्यात के फल को जानते हुए भी कुदेव, कुगुरु, कुधर्म रूप गधे की पूछ का न छोड़ना यह बाल हठ नहीं तो और क्या है? सारांश यह निकला कि मूर्ति पूजन में मिथ्यात पोषण के अतिरिक्त और कुच्छ भी गुण विशेष रूप लाभ नहीं है, और मूर्ति पूजकों के मान हुए कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेम चन्द्र सूरि जी भी मन्दिर विषय में लिखते हैं (देखिए योग शास्त्र द्वितीय प्रकाश पृष्ठ ११६ गाथा एक सौ इक्कीसवी

(१२१ वीं)।

"कंचण मणि सोवाणं थंभ सहस्सो सियं सुवण्णतलं जो कारिज्ज जिणहरं तउ वि तव संजमो अहियो"

अर्थात् यदि कोई मनुष्य कंचन मणि आदि का भी बड़ा भारी जिन मन्दिर बनवा दे, तो भी तप और संयम रूप फल उस से बहुत अधिक है। सज्जनों! बड़े शोक की बात है कि कंचनमणि आदि के मन्दिर बनाने की अपेक्षा तप संयम में महान लाभ होने पर भी उस महान लाभदायक तप संयम आराधन पर इतना जोर न देते हुए मन्दिर बनवाने और जड़ मूर्तियों के ही पीछे पड़े हुए हैं। इस उपरोक्त गाथा से भी मन्दिर का बनवाना और मूर्ति पूजा का करना कोई लाभदायक सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न—मूर्ति पूजकों का कहना है कि श्री अन्तगड़ सूत्र में अर्जुनमाली ने मोगरपाणी यक्ष

की प्रतिमा की पूजा की, और मूर्ति अधिष्ठित उस यक्ष ने आ कर अर्जुन माली की सहायता की। क्या इस से जिन प्रतिमा के पूजने की सिद्धि नहीं होती ?

उत्तर :—बिना गुरु धारणा के शास्त्र पढ़ने पर उल्टा ही मतलब निकला करता है। श्री अन्त गड सूत्र से कोई तीर्थंकर की मूर्त्ति की पूजा की सिद्धि नहीं होती, क्योंकि वह मूर्त्ति किसी तीर्थंकर की नहीं थी, और न ही अर्जुन माली उस समय जैन था। यक्ष ने जो आकर उस की सहायता की, यह बात इस लिए सम्भव है कि उस यक्ष की आत्मा उस समय देव योनि रूप संसार में विद्यमान थी, और उस यक्ष को अपनी मान बड़ाई की भी आकांक्षा बनी रहती थी। इस लिए उस ने अपनी मान बड़ाई को कायम रखने के लिए अर्जुन माली की सहायता की, लेकिन यह बात जो अर्जुन माली और मोगर पाणी यक्ष के विषय में है जिनेन्द्र देव की मूर्त्ति के विषय में नहीं घटती, क्योंकि मोगर पाणी यक्ष तो संसार में विद्यमान था, सो अपनी मान बड़ाई कायम रखने के लिए ऐसा

कर सका किन्तु तीर्थंकर देव तो मोक्ष में पहुंच गए हैं। जिन की प्रतिमा बना कर पूजा की जाती है वे आ नहीं सकते इस लिए उन की मूर्ति की पूजा से किसी प्रकार की सहायता रूप गुण प्राप्ति नहीं हो सकती और न ही उन्हें उस यक्ष की तरह अपने मान सम्मान का स्थिर रखने की आवश्यकता है। अर्जुन माली की यक्ष द्वारा सहायता का होना इस में मूर्ति कारण भूत नहीं है बल्कि यक्ष का संसार में अस्तित्व भाव रूप होना और उसे अपनी मान बड़ाई की रक्षा का ख्याल होना ही कारण भूत है। जिन तीर्थंकर देवों की मूर्ति पूजा की जाती है न ही वह संसार में हैं, जो मूर्ति पूजकों की सहायता कर और न ही उन्हें अपने मान सम्मान की ज़रूरत है। बस इस लेख से भी यही सिद्ध हुआ कि तीर्थंकरों की मूर्ति बना कर पूजना मिथ्यात्वपापमय के सिवा कुछ भी लाभदायक नहीं है।

जो दण्डी लोग बार २ ज्ञाता सूत्र का प्रमाण दे कर यह पुकारते हैं कि द्रौपदी ने जिन पूजा की है इस से भी मूर्ति पूजा जन

शास्त्र द्वारा सिद्ध होती है। यह भी उन लोगों का एक भ्रम ही है।प्रथम तो यह बात है कि उस समय जिस समयका ये प्रमाण देते हैं,द्रौपदी जैन धर्मानुयायी ही नहीं थी, क्योंकि उस के विवाह के समय पर उस के पिता के घर पर ६ प्रकार का आहार बना। यह बात शास्त्र सिद्ध है। वह ६ (छ) प्रकार का आहार इस प्रकार है: अशन पान, खादिम, स्वादिम, सुरा (शराब) और मांस। जिस के घर मे मांस और शराब आदि आहार बनाया जाए, वह व्यक्ति कदापि जैन धर्मानुयायी नही हो सकता, इस से सिद्ध हुआ कि उस समय द्रौपदी जैन धर्मानुयायी नहीं थी, और जो जिनार्चन द्रौपदी ने किया है शास्त्र मे यह शब्द आया है इस का मतलब जिन अर्थात तीर्थंकर की मूर्ति से नहीं है। यहा जिन शब्द का प्रयोग काम देव का मूर्ति से सम्बध रखता है। शादी के अवसर पर प्राय करके ससारी लोग अज्ञानता के कारण कामदेव आदि की मूर्त्ति की पूजा किया करते है। यद्यपि यह बात भी कुछ विशेष महत्व

नहीं रखती है किन्तु संसारी जीवों को अनेक प्रकारके भ्रम बने रहते हैं, इस कारण से सांसारिक सुख के लिए अनेक प्रकार की चेष्टाएं किया करते हैं श्री स्थानांग सूत्र में तीन प्रकार के जिन माने हैं : (१) अवधि ज्ञानी जिन (२) मनपर्यव ज्ञानी जिन (३) केवल ज्ञानी जिन । ये शास्त्र द्वारा कथित तीन प्रकारके जिन केवल पाठक गणों को जिन पर्याय वाची बोध के लिए लिख गए हैं। और श्री हेम चन्द्र आचार्य कृत श्री हेम नाम माला में ४ प्रकार के जिन माने हैं श्लोक :-

अर्हन्तापिजिनो चेव जिना सामान्य केवली, कन्दर्पोपि जिनीचेव, जिनो नारायणाहरि ।

श्री हेम चन्द्र जी द्वारा बतलाए गए चार प्रकार के जिन इस प्रकार हैं –

(१) अरिहन्त (२) केवली (३) कामदेव और नारायण। यहां पर कामदेव की प्रतिमा से ही जिन शब्द का मतलब है। इस से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गई कि कामदेव की प्रतिमा का ही द्रौपदी ने विवाह के अवसर पर प्रथम

किया था।

इस का समर्थन विजयगच्छाचार्य श्री गुण सागरसूरिने स्वरचित ढाल-सागर खंड ६ ढाल ११६ के आठवें दोहे में (रचनाकाल) वि. सं. १६७२) किया है, देखिये :—

'करी पूजा कामदेवनी, भाखे द्रुपदी नार।
देव दया करी मुझने, भलो देजो भरथार॥''

द्रौपदी जी ने तो विवाह के समय सांसारिक कामनाओं को लिए हुए कामदेव की प्रतिमा का अर्चन किया था, क्या पुजेरे लोग भी बनावटी तीर्थंकर मूर्त्ति बना कर सांसारिक सुखों के लिए या विवाहादि कार्यों के लिए ही पूजते हैं ? यदि ऐसा ही है, तब तो यह लोग बडा अन्याय करते हैं, कि जो भोगपरित्यागी तीर्थंकर देव से भोग रूप फल की प्राप्ति चाहते हैं। यदि ऐसा नहीं है, तो द्रौपदी

जी का उदाहरण देना सर्वथा मिथ्या है। इस द्रौपदी जी ने जिन अरिहन्त की पूजा की, ऐसा बार २ रटन करना एक अनजान जनता को धोखा देना है क्योंकि द्रौपदी जी के पूजाधिकार में अरिहन्त शब्द आया ही नहीं है। ऐसे संशयात्मक कथन से दूसरे लोगों के भ्रम में पड़कर कोई भी बुद्धिमान सच्चे मार्ग से भ्रष्ट नहीं हो सकता।

प्रश्न :—जैन लोग अन्य देवी देवताओं की मूर्तियों व मढ़ी मसानी आदि को क्यों माथा टेकते हैं ?

उत्तर :—[illegible] किन्तु वास्तव में हम देवी देवताओं की मान्यता पूजा को मिथ्यात्व ही समझते हैं (बुद्धिमान धर्म विश्वासी जैन तो मढ़ी मसानी आदि की पूजा करते ही नहीं हैं) इसी प्रकार क्या आप लोग भी जिन प्रतिमा की पूजा और मान्यता को मिथ्यात्व ही समझते हैं ! अगर ऐसा है तो आप का और हमारा कोई विवाद नहीं है। कह दीजिए कि हम भी इसे मिथ्यात्व

ही समझते हैं।

मूर्ति पूजक का उत्तर अजी हम तीर्थंकर भगवान् की मूर्त्ति की पूजा और मान्यता को कैसे मिथ्यात कह सकते हैं, वह तो हमें मोक्ष फल के देने वाली है।

मूर्त्ति निषेधक का उत्तर: बस भाई साहिब। आप का हमारा यही तो विरोध है, कि हम मढी मसानी की मान्यता को जिस तरह मिथ्यात समझते हैं, उसी तरह जिनदेव की प्रतिमा के पूजनार्चन को भी मिथ्यात ही समझते हैं। आप उसे मोक्ष फल दाता समझते हैं।

प्रश्न –क्या जैन शास्त्रों में तीर्थंकर भगवान् की मूर्त्ति पूजा का विधान नहीं है?

उत्तर:–नहीं।

प्रश्न:–तीर्थंकरों की बनावटी मूर्त्ति का पूजा विधान सूत्रों में क्यों नहीं?

उत्तर:–क्यों कि यह मिथ्यात है इस लिए सूत्रों में इस का विधान नहीं है। तपन्दो आत्मा राम जी ने भी 'अज्ञान तिमिर भास्कर" नाम

जी का उदाहरण देना सर्वथा मिथ्या है। बस द्रौपदी जी ने जिन अरिहन्त की पूजा की, ऐसा बार २ रटन करना एक अनजान जनता को धोखा देना है क्योंकि द्रौपदी जी के पूजाधिकार में अरिहन्त शब्द आया ही नहीं है। ऐसे संशयात्मक कथन से दुसेरे लोगों के भ्रम में पड़कर कोई भी बुद्धिमान सत्य मार्ग से भ्रष्ट नहीं हो सकता।

प्रश्न —जैन लोग अन्य देवी देवताओं की मूर्तियों व मढ़ी मसानी आदि को क्यों मानां न्कते हैं?

उत्तरः—संसार वाले किन्तु वास्तव में वह देवी देवताओं की मान्यता पूजा को मिथ्यात्व ही समझते हैं (बुद्धिमान धर्म विश्वासी जैन तो मढ़ी मसानी आदि की पूजा करते ही नहीं हैं) इसी प्रकार क्या आप लोग भी जिन प्रतिमा की पूजा और मान्यता को मिथ्यात्व ही समझते हैं? अगर ऐसा है तो आप का और हमारा कोई विवाद नहीं है। कह दीजिए कि हम भी उसे मिथ्यात्व

उपरोक्त लेखों से स्पष्टतया सिद्ध हो गया, कि तीर्थंकर मूर्त्ति पूजा प्रमाणिक ३२ शास्त्रों में नही है। मूर्त्ति पूजकों का ससार को धोका देने के लिए जो यह कहना है, 'कि मूर्त्ति पूजा जैन शास्त्रोक्त है, और प्रमाणिक जैन शास्त्रों में ठाम २ पर मूर्त्ति का कथन है, उन का यह कहना सर्वथा मिथ्या है या "ता मूर्त्ति पूजा शास्त्रोक्त है" ऐसा कहने वालों का कहना मिथ्या है या "मूर्त्ति पूजा विधान शास्त्र में नही है" ऐसा कहने वाले दण्डी वल्लभ विजय जी के मान्य गुरु दण्डी आत्मा राम जी का कहना मिथ्या है। दोनों में से एक बात तो है ही। बस ! शास्त्रों में जिनदेव की मूर्त्ति पूजा का कथन है, इस का रटन करना व्यर्थ और सर्वथा निर्मूल है। शोक तो इन मूर्त्ति पूजक जैनों पर इस बात का है, कि प्रमाणिक जैन शास्त्रों में तीर्थंकर मूर्त्ति पूजा का विधान न होने पर भी, फिर भी अपनी हठ को न छोड कर मूर्त्ति के पीछे पडे रहना।

प्रश्न —जब मूर्त्ति घडकर कारीगर के घर में त्य्यार हो जाती है, तो क्या उसे मूर्त्ति पूजक माथा

वाली पुस्तक के द्वितीय खण्ड के पृष्ट २९ और ४७ पर लिखा है "कि मूर्ति पूजा विधान सूत्र में नहीं है, किन्तु स्थूली रूप लोगों में चिर काल से चला आता है। इसी प्रकार श्रीमज्ज्ञानांत्रिंशिका के पृष्ट ४९ पर लिखा है, जिस का भाव इस प्रकार है कि ढूंढीए लोग मूल सूत्रों को ही मानना स्वीकार करते हैं। भाष्य, चूर्णी, निर्युक्ति, टीकादि को नहीं मानते यदि मान लेवें, तो मूर्ति पूजा को नहीं मानना, और मूंह का बांधना मिथ्या में झूठा हो जाए।" इन शब्दों से भी साफ़ यही भाव निकलता है कि प्रमाणिक ३२ जैन शास्त्रों से तीर्थंकर मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं है और हाथ में मुखपत्ति रखना भी इसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता और 'अज्ञान तिमिर भास्कर' द्वितीय खण्ड के पृष्ट ११० पर भी ऐसा ही लिखा है। इन

शास्त्र विरुद्ध बात है, कि मोक्षात्माओं के संसार में सच्चे जैन शास्त्रानुसार न आने पर भी फिर उन्हें संसार में आह्वान के मन्त्र पढ़ कर बुलाने की चेष्टा करना।

प्रश्न :—क्या मूर्तिपूजक भी मोक्षात्माओं का संसार में वापिस आना नहीं मानते?

उत्तर :—हां, उन का भी यही श्रद्धान है, "कि मोक्षात्माएं इस संसार में नहीं आतीं।

प्रश्न :—जब मोक्षात्माएं उन के श्रद्धान के अनुसार भी इस संसार में वापिस नहीं आती हैं, तो उन्हें बुलाने की चेष्टा क्यों की जाती है?

उत्तर :—इस का कारण है :—हठ और अज्ञान मिथ्यात्व, मोहनीय कर्म के उदय की प्रबलता। जब मोक्षात्माएं जैन सिद्धान्तानुसार संसार में वापिस नहीं आती हैं, तो मूर्त्ति में भी तीर्थंकर रूप मोक्षात्माओं का सद्भाव स्थापित नहीं हो सकता, और वह जड़ मूर्त्ति जड़ भाव में ही रहेगी,

और, न ही वह निर्गुण जड़ मूर्त्ति किसी भी अवस्था में पूजनीय हो सकती है। एक बड़ा भारी

देखते हैं या नहीं ?

उत्तर —नहीं ।

प्रश्न —क्यों नहीं ?

उत्तर —मूर्ति पूजकों का कहना है कि अभी वह मूर्ति अशुद्ध और गुण सम्पन्न नहीं है ।

प्रश्न —अजी ! उस में किस बात की न्यूनता है ! आंख नाक कान मुख हाथ और पांवों आदि तो उस मूर्ति के अंग प्रत्यंग सब कुछ बन ही चुके हैं । अब उसे न पूजने का क्या कारण है ?

उत्तर —उस में अभी प्राण प्रतिष्ठा स्थापन नहीं की गई है ।

प्रश्न —अजी प्राण प्रतिष्ठा क्या चीज है ! हम तो नहीं जानते हैं ।

उत्तर :—प्राण प्रतिष्ठा का मतलब है उस जड़ प्रतिमा में आह्वान के मन्त्रों द्वारा मोक्ष प्राप्त तीर्थंकरों को बुला कर उस मूर्ति में उन्हें स्थापन करना ।

प्रश्न —क्या मोक्षात्माओं का इस संसार में वापिस आना जैन शास्त्र मानता है ?

उत्तर :—नहीं । यही तो कपोल कल्पित और

उन्हें बुलाकर मूर्त्ति में स्थापित करने की चेष्टा करते हैं।

प्रश्न :—मूर्त्ति पूजकों का यह भी विश्वास है कि पण्डित लोग या कोई पढ़ा लिखा भिक्षु (साधु) शूद्र द्वारा घड़ कर तय्यार की गई मूर्त्ति को मन्त्रों द्वारा शुद्ध कर लेते हैं, तो क्या वह शुद्ध हो जाती है?

उत्तर :—नहीं। जिस तरह कोई मन्त्र पढ़कर कोयले को बार २ पानी में डाल कर शुद्ध करना चाहे, तो कोयला उस मन्त्र के प्रभाव से, और पानी के स्पर्श से कालिमा के दोष से विमुक्त नहीं हो सकता। अगर मन्त्र पढ़कर कोयला पानी में डालने से कालिमा के दोष से विमुक्त हो जाए, तो समझो कि मन्त्रों द्वारा जड़ मूर्त्ति का जड़ दोष भी दूर हो सकता है। यदि कल्पना करके मान लें कि मूर्त्ति पूजकों के विश्वासानुसार वह मूर्त्ति किसी पण्डित आदि के द्वारा मन्त्र पढ़ने से शुद्ध हो सकती है, तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि मूर्त्ति को शुद्ध करने वाला बड़ा है या शुद्ध होने वाली मूर्त्ति?

द्वारा मोक्षात्माओं का संसार में आह्वान करने से यह भी माना है कि "जो आत्माएं जन्म मरण से रहित होकर मुक्ति को प्राप्त कर चुकी हैं वह मूर्ति के भक्त फिर उन पवित्रात्माओं को जड़ मूर्ति रूप कारागृह में बन्द करना चाहते हैं। धन्य है ऐसे भक्तों को! यदि वास्तव में मूर्तिपूजकों के विचारानुसार आह्वान के मन्त्रों द्वारा मोक्ष प्राप्त रूप तीर्थंकर भगवान् आ जाते हैं तो उन का सिद्धान्त गलत पाया जाता है, क्योंकि, मूर्तिपूजकों का सिद्धान्त भी मोक्षात्माओं का संसार में आगमन नहीं मानता है।

प्रश्न – यदि उन के सिद्धान्तानुसार मोक्षात्माएं संसार में नहीं आ सकतीं, तो फिर तो वह जड़ मूर्ति वैसी का वैसी ही रह जायगी, फिर उस जड़ मूर्ति की उपासना से क्या लाभ है और उन मोक्षात्माओं का आह्वान करने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर —यही तो बात विचारने की है कि मोक्षात्माओं के संसार में न आने पर भी फिर भी

कि मूर्त्ति की द्रव्य पूजा में ६ (छः) काया के जीवों की विराधना होती है।

प्रश्न :-अगर मूर्त्ति पूजा करने से ६ काया के जीवों की विराधना होती है, तो क्या भगवान् की पूजा करने से पुण्य रूप लाभ नहीं हो सकता? जिस तरह कूप खुदाने में हिंसा होने पर भी कुए के पानी से पानी पीने वाले जीवों की प्यास निवृत्ति होने से पुण्य का लाभ हो सकता है।

उत्तर :-कदापि नहीं, क्योंकि कुए के पानी से तो अनेक जीवों की तृषा की निवृत्ति हुई, और वे जीव सुख को प्राप्त हुए, मूर्त्ति पूजा से क्या लाभ हुआ? किस जीव के किस दुःख की निवृत्ति हुई? मूर्त्ति पूजा में दुःख निवृत्ति तो क्या, किन्तु छ काया के जीवों की हिंसा तो अवश्य हुई, इस लिए कूप का दृष्टान्त मूर्त्ति पूजा विषय में नहीं घट सकता और न ही मूर्त्ति पूजा में हिंसा होने से कर्म बन्ध के सिवा पुण्य बन्ध हो सकता है।

प्रश्न -मूर्त्ति पूजकों का यह भी कहना है कि जिस तरह एक नारी के चित्र को देख कर विकार

नियम यह है कि अशुद्ध को शुद्ध करने वाला ही पूजनीय और बड़ा होता है यहाँ तो इस का उल्टा ही भाव देखा जाता है। शुद्ध करने वाला पूजा करता है और शुद्ध होने वाली मूर्ति की पूजा की जाती है।

प्रश्न कर्ता का उत्तर —अजी यह तो बड़ा ही निश्चित नियम है कि शुद्ध होने वाला तो पूज्य, और शुद्ध करने वाला पुजारी।

मूर्ति निषेधक का उत्तर —हाँ २ मूर्ति पूजा में यही तो बड़ी भारी दोषापत्ति आती है इसी लिए तो हम शुद्ध प्राचीन स्थानक वासी जैन जड़ मूर्ति पूजा नहीं करते हैं और न ही बुद्धिमान संसार को ऐसा करना चाहिए।

प्रश्न —क्या मूर्ति पूजा में हिंसा दोष भी लगता है।

उत्तर —हाँ २ क्यों नहीं। अवश्य ही छः (६) काया के जीवों की विराधना रूप हिंसा लगती है। इस बात को तो उन्हीं आत्मा राम जी ने भी "जैनतत्त्वादर्श" के पृष्ठ २९० पर स्वीकार किया

कि मूर्त्ति की द्रव्य पूजा में ६ (छः) काया के जीवों की विराधना होती है।

प्रश्न :-अगर मूर्त्ति पूजा करने से ६ काया के जीवों की विराधना होती है, तो क्या भगवान् की पूजा करने से पुण्य रूप लाभ नही हो सकता? जिस तरह कूप खुदाने में हिंसा होने पर भी कूप के पानी से पानी पीने वाले जीवों की प्यास निवृत्ति होने से पुण्य का लाभ हो सकता है।

उत्तर :-कदापि नहीं, क्योंकि कुप के पानी से तो अनेक जीवों की तृषा की निवृत्ति हुई, और वे जीव सुख को प्राप्त हुए, मूर्त्ति पूजा से क्या लाभ हुआ? किस जीव के किस दु ख की निवृत्ति हुई? मूर्त्ति पूजा में दु ख निवृत्ति तो क्या, किन्तु छ काया के जीवों की हिंसा तो अवश्य हुई, इस लिए कूप का दृष्टान्त मूर्त्ति पूजा विषय में नहीं घट सकती और न ही मूर्त्ति पूजा में हिंसा होने से कर्म बन्ध के सिवा पुण्य बन्ध हो सकता है।

प्रश्न -मूर्त्ति पूजकों का यह भी कहना है कि जिस तरह एक नारी के चित्र को देख कर विकार

पैदा हो सकता है उसी तरह एक वीतराग देव की देख कर वैराग्य भी पैदा हो सकता है और वे मूर्ति पूजक दशवैकालिक सूत्र अध्ययन आठवें की ५५ वी गाथा के श्लोक का बार २ उदाहरण दिया करते हैं। वह श्लोक यह है —

चित्त भित्त न निज्झाए'

इस श्लोक का अर्थ है कि "भीत चित्रों का अवलोकन करे।" भीत चित्र पद में नारी के चित्र का कोई उल्लेख नहीं है। यहां तो भीत के चित्र मात्र देखने का निषेध किया गया है। भीत चित्र शब्द में जो २ चीजें भीत पर चित्रित की गई हैं, चाहे वह मनुष्य पशु, तोता मैना बैल, बूटा, फल, फूल आदि कोई भी चित्र क्यों न हो भीत चित्र शब्द में इन सब का समावेश हो जाता है। तो फिर इन भीत चित्रों के अवलोकन करने का निषेध शास्त्रकारों ने क्यों किया है?

उत्तर —भीत चित्र अवलोकन का निषेध इस लिए किया गया है कि उन चित्रों के अवलोकन करने से साधु के ज्ञान ध्यान आदि क्रियाओं में

विघ्न पड़ेगा, क्योंकि साधु का काम है ज्ञान, ध्यान, तप, संयम आदि क्रियाओं मे लगे रहना। तुमारयशी भीत चित्रों के अवलोकन मे लगे रहने से स्वाध्यायादि केसमय का उन चित्रों के अवलोकन करने से दुरुपयोग होगा, और समय का दुरुपयोग करने से ज्ञान, ध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

प्रश्न :—अजी क्या भीत चित्र अवलोकन निषेध करने का कारण यह नहीं हो सकता, कि उन चित्रों को देखने से विकार पैदा होता है।

उत्तर :—नहीं।

प्रश्न :—क्यों नहीं ?

उत्तर :—इस का उत्तर स्पष्ट ही है, किन्तु फिर भी मैं आप को इस का स्पष्टीकरण करके समझा देता हू। भीत चित्रित गुलाब के फूल को देख कर देखने वाले के मन में उसे सूंघने का विकार कभी भी पैदा नहीं हो सकता। इसी तरह चित्रित आम को देख कर भी उस आम को चूसने का भावरूप विकार पैदा नहीं हो सकता, और भीत ऊपर चित्रित की गई रेल को देख कर उस

मैं सवार होने का भाव पैदा नहीं हो सकता। जिस तरह हम चीजों को देख कर इन चीजों से सम्बंध रखने वाले भाव का विकार पैदा नहीं हो सकता उसी तरह जड़ प्रतिमा को देख कर वैराग्य भाव भी पैदा नहीं हो सकता। दशवैकालिक सूत्र की गाथा के उपरोक्त उल्लेख से केवल नारी चित्र अवलोकन करने का निषेध सिद्ध नहीं है क्योंकि उपरोक्त स्थल में तो चित्र मात्र का निषेध किया गया है। साबित की विषय का उल्लेख तो यह है: 'नारिं वा सुअलंकियं' सुअलंकृत अर्थात् शृंगार संयुक्त स्त्री का अवलोकन साधु न करे। यहां चित्रित नारी चित्र से मतलब नहीं है, यहां तो वास्तविक नारी से अभिप्राय है। जिन का यह कहना है कि नारी का चित्र देखने से विकार पैदा होता है, तो उन का वास्तविक नारी को देख कर न मालूम क्या हाल होता होगा। फिर तो घरों में जाना स्त्रियों से भोजनादि लेना व्याख्यानादि के बीच में स्त्रियों के गीत गायन कराना और आप उन्हें बैठे २ सुनना इत्यादि सब बातें छोड़नी

पड़ेंगी, किन्तु ऐसा करते हुए हम उन्हें नहीं देखते है, यह तो वही बात हुई, "खुद मीया फजीयत, औरों को नसीयत" आप तो स्वयं दो २ घटे अपने स्थान में स्त्रियों को लिए हुए बैठे रहना, और कहना यह कि नारी चित्र से विकार पैदा होता है। क्या जब स्त्रियों के बीच बैठते हैं, तो आखें बन्द कर ली जाती है ? अगर ऐसा नहीं, तो कल्पित नारी चित्र से क्या हो सकता है ? यह तो वही बात हुई "पण्डित वैद्य मशालची, तीनों चतुर कहाए,

औरों को दे चांदना, आप अंधेरे जाए"

प्रश्न :–क्या धर्मी पुरुषों को मूर्त्ति पूजा करने का कहीं निषेध किया है ?

उत्तर :–हा, क्यों नहीं, ढण्डी अमर विजय जी कृत "ढूण्ढक हृदय नेत्रांजन" नाम की पुस्तक में पृष्ठ १५८ पर बतलाया है

अगर साधु मूर्त्ति पूजा करे, तो साधु-व्रत से भ्रष्ट हो कर, कर्म बन्ध करके अनन्त संसार भ्रमण करे"

इस लेख से साफ़ सिद्ध हो गया कि मूर्ति पूजा से कर्म बंध होकर अनन्त संसार भ्रमण करना पड़ता है।

शंका —यहाँ तो साधु के लिए मूर्ति पूजा का निषेध किया है गृहस्थ के लिए तो नहीं।

शंका का समाधान —अगर मूर्ति पूजा मोक्ष फल देने वाली शुभ क्रिया है तो उसे करने का साधु के लिए निषेध क्यों किया है? एक गृहस्थी के लिए अगर ब्रह्मचर्य पालना उचित है, तो क्या वह साधु के लिए उचित नहीं? इसी तरह अगर किसी गृहस्थ का मूर्ति पूजा से मोक्ष फल की प्राप्ति होती है तो क्या मूर्ति पूजक साधु मोक्ष नहीं जाना चाहिये जो उन के लिए मूर्तिपूजा का निषेध किया गया है। अगर मूर्ति पूजा से एक साधु अनन्त संसार रुल सकता है तो क्या गृहस्थी नहीं रुल सकता? क्या यह मूर्ति पूजा करके संसार में अनन्त भ्रमण करना गृहस्थों के ही हिस्से में आया है? जो विष साधु को मार सकता है, वह गृहस्थी को भी मार सकता है।

इसी तरह जो मूर्तिपूजा एक साधु को अनन्त ससार में भ्रमण करा सकती है, तो वह गृहस्थी को भी करा सकती है। बस दण्डी अमरविजय जी के इस लेख से स्पष्ट हो गया, कि मूर्ति पूजा अनन्त ससार भ्रमण कराने वाली है। प्यारे सज्जनों! ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो मूर्ति पूजा करके अनन्त ससार भ्रमण की चेष्टा करेगा।

मूर्ति पूजक का उत्तर :–प्रिय मित्र! आप के द्वारा शास्त्रीय सप्रमाण मूर्ति पूजा निषेधक प्रबल युक्तियां और प्रश्नोत्तरों को पूर्णतया समझ कर मैं आज से ही जड मूर्ति पूजा रूप मिथ्या सेवन का परित्याग करता हूं, क्यों कि यह अनन्त ससार भ्रमणात्मक मिथ्यात्व है।

२ पुजेरे दण्डियों द्वारा माना हुआ जड़ मूर्त्ति पूजा में अनन्त व्रत रूप तप फल ॥

प्रश्न :—क्या जिनादि मन्दिर कोई बुरी चीज है ?

उत्तर :—हां क्यों नहीं जिनादि मन्दिर के कारण ६ (छ) काया के जीवों की हिंसा का महा आरम्भ समारम्भ होता है, अतः जिन मन्दिर एक निषेध वस्तु है।

प्रश्न —इस विषय में क्या आप के पास कोई प्रमाण भी है कि जिनादि मन्दिर निषेध वस्तु है।

उत्तर :—हां लीजिए। 'जैन तत्त्वादर्श' पृष्ठ १०३ पर दण्डी आत्मा राम जी ने स्वयं ही लिखा है, कि जहां जिन मन्दिर की छाया पड़े और जहां अरिहन्त (मूर्ति) की दृष्टि पड़े वहां न बसे अर्थात जिधर को मूर्त्ति का मुंह होवे, उस के

सामने न बसे" इस लेख से स्पष्टतया सिद्ध हो गया, कि जिन मन्दिर एक निषेध वस्तु है। जिस के शिखिर की छाया मात्र भी दु खदायी है, वह वस्तु ग्रहण करने योग्य कैसे हो सकती है? बस का तो छोड़ना ही सुख कर है।

प्यारे सज्जनों! उधर तो दण्डी आत्मा राम जी मन्दिर के शिखिर की छाया मात्र का पड़ना भी दु खदायी बतला रहे हैं, और इधर "जैन तत्त्वादर्श" के पृष्ट २२८ पर यह कहते हैं:

"कि जिन मन्दिर में जाने का भाव पैदा होने मात्र से एक व्रत का फल होता है। जाने के लिए उठे, तो दो व्रत का, चलने के लिए उद्यम करे, तो तेले का, चल पड़े तो चौले का, थोड़ा सा मार्ग तह करे, तो पंचौले का, आधा मार्ग तह करे तो १५ दिन का

मूर्त्ति को देखे तो एक महीने का, जिन भुवन में प्रवेश करे तो ६ महीने का, जिन मन्दिर के दरवाजे पर स्थित होवे, तो एक वर्ष के तप व्रत का फल होता है, जिनराज (प्रतिमा) की प्रदक्षिणा देने से (१००) वर्ष के तप का फल, पूजा करे, तो हजार वर्ष का, स्तुति करे तो अनन्त गुणा फल होता है। जिन मन्दिर पूजे तो पहिले फल से भी सौ गुणा, लीपे तो हजार गुणा, फूल चढ़ावे तो लाख गुणा, गीत वाजिन्त्र पूजा करे, तो अनन्त गुणा फल होता है।"

प्रिय बन्धुओ! कितनी हास्यप्रद और अज्ञानता सूचक बात है, कि मनादि में सकल्प मात्र होने से एक व्रत फल, और इस प्रकार बढ़ते २ इन्हीं बाह्य क्रियाडम्बरों से अनन्त व्रत फल। अगर ऐसा ही है, तो उन्हें साधु बनने की क्या जरूरत है और ब्रह्मचर्य, व्रतादि का पालन करना और तपस्या करने की भी कोई आवश्यकता बाकी नही रह जाती है। फिर मुण्ड मुण्डाकर घर २ के टुकड़े मागने की भी क्या जरूरत है। बस फिर तो उन के कथनानुसार आत्मकल्याणार्थ उपरोक्त क्रियाओं का फल ही काफी है। अगर ये क्रियाएं मोक्ष देने में पर्याप्त नही हैं, तो ऐसे २ मनकल्पित प्रलोभन देकर भोली जनता को सन्मार्ग से भ्रष्ट करके जड़ मूर्ति पूजा के भ्रम में डालने के सिवा और क्या है? इन्हीं मूर्तिपूजकों के "धर्मोपदेश" नामक ग्रथ में और भी मन कल्पित ऐसा ही कहा है, गाथा :–

> "सयपम्म जणे पुन्न, सहस्सच विलेवणे सय
> सहस्सीया माला अणंता गीय वाइय"।

इस गाथा में बतलाया है —

"कि प्रतिमा को निर्मल जल से स्नान करावे, तो सौ व्रत का फल होवे। चन्दन, केसर, कपूर, कस्तूरी, अगर, तगर आदि इन वस्तुओं को गुलाब जल में घिसा कर भगवन्त (प्रतिमा) की नवांगी पूजा करे, तो हजार वर्ष का पंच वर्णों की माला पहरावे, तथा चमेली, रायमेली, चपा मोगरा, मच-कुन्द, गुलाब, मरुवा आदि अनेक प्रकार के फूलों का ढेर लगावे, तो लाख व्रत का, गीत, गायन, छ (६) राग छत्तीस (३६) रागिनी गावे, और ढोल

नक्कारा, ताल, मृदंग, वीणा, तम्बूरा, सारंगी आदि अठतालीस (४८) प्रकार के वाजित्र बजावे, और नाटकादि नाचना, कूदना मूर्त्ति के आगे करे, तो अनन्त व्रत का फल होता है।"

क्या ही सस्ता सौदा है! जब नाचने, कूदने आदि में पुजेरे दण्डियों के धर्म ग्रन्थ अनन्त फल बतलाते हैं, तो नृत्य कारकों को तो न मालूम इन पुजेरे दण्डियों के कथनानुसार कितने अनन्तानन्त व्रतों का फल होता होगा। अगर नाचने, कूदने और ढोल वाजित्र आदि बजाने से अनन्तानन्त व्रत फल की प्राप्ति होती है, तो साधु व्रतादि सद्क्रियाओं के धारण करने की क्या जरूरत है? तो फिर नाचना, कूदना ही शुरु क्यों न कर दिया जाए! लेकिन ये सब बातें कपोलकल्पित और मिथ्या ही हैं, अतः ये बातें विश्वास करने योग्य नहीं हैं। नाचने, कूदने में अनन्तानन्त तप फल

बतलाना मोक्ष साधक आत्माओं को तप जप, संयम से वंचित रखना है क्योंकि जब इन क्रियाओं में अनन्तानन्त तप जप फल ऐसे जीवों को होता हुआ मालूम होगा तो वे तप नियमादि आराधन करके अपनी काया को क्यों दण्डित करेंगे ! नहीं नहीं मोक्ष साधक प्रियात्माओं ! इन क्रियाओं के अपनाने से न अनन्त व्रत रूप फल की प्राप्ति होती है और न ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है । जितने भी साधु रूप साधकीय भव्यात्माएं मोक्ष को प्राप्त हुई हैं वे तप संयम आदि कठिन क्रियाओं के आराधन करने से ही हुई हैं।

प्रश्न —सम्यक् दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक् दर्शन उस सच्चे श्रद्धान को कहते हैं, जो वस्तु स्वरूप के वास्तविक भाव को लिए हुए हो, जैसे कि चौन्तीस अतिशय पैन्तीस वाणी गुण संयुक्त चेतनभावी अरिहन्त देव में ही देव भाव मानना अर्थात् किसी जड़ मूर्ति रूप

गुण रहित पाषाणादि आकृति विशेष में अरिहन्त देव रूप देव भाव की श्रद्धा न करना। जर, जोरू, जमीन के त्यागी और एक इन्द्रिय से लेकर पञ्च इन्द्रिय प्रयन्त ६ (छ) काया के जीवों की रक्षा करने वाले, अपने निमित्त किया गया आहार पानी आदि न लेने वाले, श्री तीर्थंकर भगवान् के निमित्त भगवान् कल्पित जड़ मूर्ति पर फल फुलादि चढ़ाने का उपदेश न देने वाले, गृहस्थों से मुट्ठी चापी न कराने वाले और अपना भण्डोपगरण अर्थात् अपना सामान गृहस्थों से न उठवाने वाले, स्वात्मावलम्बी सच्चे त्यागी गुरुओं को ही गुरु मानना। पृथ्वी आदि ६ (छः) काया की हिंसा में पाप मानना और षट काया के जीवों की रक्षा में धर्म मानना, कुदेव, कुगुरु, कुधर्म में आत्मकल्याण का विश्वास न करना, और तत्त्वों के अर्थ में ठीक २ विश्वास का रखना ही सम्यक् दर्शन है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी सम्यक् दर्शन के विषय में ऐसा ही कहा है। सूत्र यथा :—

"तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यक् दर्शन"

अर्थात् तत्त्वों के ठीक २ अर्थ भाव में यथार्थ विश्वास का रखना ही सम्यक् दर्शन है।

प्रश्न—दुनिया में भगवान् ने किस वस्तु का मिलना अति दुर्लभ फरमाया है?

उत्तर—भगवान् ने सच्ची श्रद्धा का प्राप्त होना ही अति दुष्प्राप्य फ़रमाया है।

प्रश्न—कौन से सूत्र में फ़रमाया है?

उत्तर:—श्री उत्तराध्ययन जी सूत्र अध्याय तीसरा गाथा नवमी:—

"आहच्च सवणं लद्धुं सद्धा परम दुल्लहा
सोच्चा नेआउयं मग्गं बहवे परिभस्सई।"

इस गाथा का भावार्थ है, "कि कदाचित पूर्व पुण्योदय से शास्त्र श्रवण करना प्राप्त हो जाए तो उन सुने हुए वस्तुभाव पर सच्ची श्रद्धा का होना अति दुर्लभ है, क्योंकि बहुत सारे जीव मिथ्या मोहनीय कर्मोदय से न्याय मार्ग को सुन कर भी न्याय मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं। प्रिय सज्जनों! ये भगवान् के वचन न्याय परोक्ष ही मार्ग हैं। परन्तु हम भगवान के वचनों का हम मान

संसार मे सार्थक रूप से देख रहे हैं, बहुत सारे मनुष्य अपने आप को महावीर मतानुयायी कहलाने पर भी आज भगवान् के वचनों से विपरीताचरण कर रहे हैं, और कुगुरु, कुदेव कुधर्म के मिथ्या प्रवाह में बहे जा रहे हैं, और दूसरों को मिथ्यात्व समुद्र के प्रबल प्रवाह में बहा रहे हैं। सारांश यह निकला कि मिथ्या विश्वास को छोडना ही सम्यक् दर्शन है।

३ पुजेरे "दुखियों का तमाशा दिखाने वाला और सर्व जाति का अनिष्ट मूल पीने वाला चौविहार व्रत।"

प्रश्न —सम्यक चारित्र किस को कहते हैं?

उत्तर —केवल कर्मनिर्जरा और मोक्ष प्राप्ति के लिए ही तप जप संयम इच्छा निरोध कषायदमनादि क्रियाओं का ही करना, किसी सांसारिक सुख प्राप्ति के लिए इन क्रियाओं का न करना ही सम्यक चारित्र है। इस विषय में भी दशवैकालिक सूत्र के नवम अध्ययन उद्देश चौथे में कहा है कि तप और आचार रूप धर्म प्रयोग इस लोक और परलोक, कीर्ति वर्ण यश श्लाघा आदि के निमित्त नहीं कर केवल कर्म निर्जरा और अरिहन्त पद की प्राप्ति के लिए ही कर।

सम्यक चारित्र का वास्तविक भाव है कि भगवान् ने जिस रूप में तप संयमादि क्रियाएं

फरमाई है उन्हें उसी रूप में पालने की पूर्ण चेष्टा करना अगर चौविहार व्रत है तो उस में कोई भी चीज नहीं खानी पीनी चाहिए क्योंकि चौविहार व्रत का मतलब है कि कोई भी खाद्य (खाने योग्य) पेय (पीने योग्य) चीज खाने पीने के काम में नहीं लाना, ऐसे व्रत सम्यक् चारित्र में कभी भी नहीं आ सकते हैं, जिन चौविहार व्रतों में गौ मूत्र, नीम, त्रिफला चिरायता, गिलो, गुगल, चन्दन, असगन्ध, हरड़ा, दाल आदि अन्न की चीज भी जिन से पेट अच्छी तरह भर सकता है, चौविहार व्रत में खा लेवे

तो चौविहार व्रत नहीं टूटता है ।

प्रश्न :—स्वामी ! क्या ये उपरोक्त कही हुई चीजें चौविहार व्रत में खानी किसी ग्रंथ में लिखी हैं ?

उत्तर :—जो सर्वज्ञ देव के फरमाए हुए प्रमाणिक सच्चे जैन शास्त्र हैं उन में तो ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है, कि चौविहार व्रत में भी गो मूत्रादि चीजें खा पी ली जाएं ।

प्रश्न :—तो फिर लिखी कहां हैं ?

उत्तर :—लिखनी कहां थी । सच्चे प्रमाणिक जैन शास्त्रों में तो ऐसी कपोल कल्पित बातें कहीं भी नहीं आ सकतीं कि चौविहार व्रत में भी राखादि चीजें खा पी ली जाएं और न ही चौविहार व्रत में ऐसी चीजें खाने पीने की भगवान् ने आज्ञा दी है ।

प्रश्न :—अगर प्रमाणिक सच्चे जैन शास्त्रों में ये बातें नहीं लिखी हैं, तो फिर कहां लिखी हैं ?

उत्तर :—यह बात पूज्यश्री आत्माराम जी कृत

"जैन तत्त्वादर्श" उत्तरार्द्ध के पृष्ट १८५ पर लिखी हैं और उन्हीं ढूण्ढी लोगों के "पांच प्रतिक्रमण सूत्र" नाम वाली पुस्तक के पृष्ट ४७९ पर भी ऐसा ही लिखा है । उस प्रति क्रमण सूत्र के लेख का भाव इस प्रकार है, "कि चौविहार व्रत में तथा रात्रि के चौविहार में ये निम्नलिखित चीजें लेनी कल्पती हैं, क्योंकि इन चीज़ों की किसी भी आहार में गणना नहीं की गई है । लघुनीति (मूत्र), नींव की शली, पानड़ा, प्रमुख, पांच अंग, त्रिफ़ला, कड़ू, करियात, गलो, नाहि, धमासो, केरड़ामूल, बोर-छाली मूल, बावल छाली मूल, कन्थेर मूल, चित्रो, खैयरसार, सूखड़, अरक़,

चीड़, अम्बर, कस्तूरी, राख, चूना, रोहिणीबीज, हरिद्र, पातली, असगन्ध, चोपचीनी इत्यादि और आगे चलकर लिखा है कि गोमूत्रादि सर्व जाति का अनिष्ट मूत्र भी चौविहार व्रत और रात्रि के चौविहार में पी ले।

क्या ही अच्छा आत्म कल्याण करने वाले व्रत हैं जिन में मूत पीना सिङ्गरफ़, चिरायता हरड़ा खाना और राख चाटना और हलवादि खाने की भी खुली छूट है।

प्रश्न :—क्या स्थानकवासी शुद्ध जैन मत में ये चीज़ें ग्रहण नहीं करते हैं और उन के माने हुए सच्चे शास्त्रों में इन चीज़ों के ग्रहण करने की आज्ञा भी नहीं है ?

उत्तर :—चौविहार व्रत में मूत्रादि का पीना और राख आदि का खाना तो मनो कल्पित

सिद्धान्त मानने वालों को ही मुबारिक है। शुद्ध प्राचीन स्थानकवासी जैन धर्मी ऐसे मूत पीने रूप गन्दे व्रत नही करते है और न ही व्रत मे दालादि पेट भरने वाली कोई अन्न की चीज ग्रहण करते हैं। शुद्ध स्थानक वासी जैन तो कष्ट में भी अपने व्रत का उल्लघन नही करते। अगर कष्ट में ऐसी वैसी चीजें खा कर शरीर का पोषण किया, तो उन की क्या धर्म श्रद्धा मानी जा सकती है। नियम की परीक्षा तो कष्ट मे ही हुआ करती है। कहा भी है–

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत्ति काल परखिए चारी।"

प्यारे सज्जनों! व्रत रूप धर्म की रक्षा के लिए तो प्राण भी चले जाएं, तो परवाह नही करनी चाहिए। धर्म रक्षा के लिए तो धर्म वीर आत्माओं ने सहर्ष धर्म को वेदी पर अपने प्राण तक न्योछावर कर दिए हैं, किन्तु धर्म से मुख नही मोड़ा, और होना भी ऐसा ही चाहिए। यह भी कोई सिद्धान्त है कि चौविहार व्रतादि में कष्टापत्ति

में जो मूत्र आदि सर्व जाति का अनिष्ट मूत्र भी है और विष्ठा, शहद अम्बर, कस्तूरी और चोप-चीनी आदि खा ली जाए। अतः अपने ग्रहण किए हुए मोक्ष प्राप्ति के लिए संयम व्रत से आपत्ति काल में भी भ्रष्ट न होना ही सम्यक् चारित्र है।

प्रश्न :—सम्यक् चारित्र की प्राप्ति के योग्य जीवात्मा कब बन सकती है?

उत्तर :—जब जीवात्मा जुआ, मांस, शराब वेश्यागमन शिकार, चोरी, परस्त्री गमन आदि कुव्यसनों का त्याग करे। सम्यक् चारित्र भावी आत्माओं का इन चीजों का त्याग करना परमावश्यक है।

प्रश्न :—क्या शोपचार नियम विरुद्ध चीज लेने की कोई गुरु या शास्त्र आज्ञा देता है?

उत्तर :—नहीं। सच्चा शास्त्र या सच्चा गुरु आपत्ति काल में भी सदोष वस्तु ग्रहण करने की आज्ञा नहीं दे सकता।

प्रश्न :—क्या आप ने कदापि आपत्ति रूप कारण में धर्म विरुद्ध सदोष वस्तु ग्रहण कर ली

जाए, कहीं ऐसा उल्लेख देखा है !

उत्तर :–नहीं । वीर प्रभु के सच्चे शास्त्रों में तो ऐसा उल्लेख कहीं नहीं देखा, कि कारण में दोषदार वस्तु भी निर्दोष हो जाती है ।

प्रश्न :–तो आप ने ऐसा उल्लेख कहां देखा है ?

उत्तर :–दण्डी वल्लभ विजय जी कृत "पूजा संग्रह अनेस्तवन सग्रह" नाम वाली पुस्तक में स्तवन सग्रह विभाग के ३१५ पृष्ट पर दण्डी वल्लभविजय जी आहार के ४७ दोषों की गुहली में लिखते हैं :–

सज्जनी बिन कारण जे दोष रे, सज्जनी कारण ते निर्दोष रे ।"

दण्डी वल्लभ विजय जी की इस कविता का मतलब यह है, "कि जो चीज़ विना कारण दोष रूप है, वही चीज़

कारण में निर्दोष रूप है।

स्पष्टीकरण :—इस कविता का सारांश यह निकला कि रोगादि बिना किसी बीमारी के दोष संयुक्त आहार पानी लिया जाए तब तो वह आहार पानी दोषदार है। अगर कोई बीमारी आदि शरीर में कारण हो जाए, तो वह जो बिना कारण में चीज का लेना दोष था रोगादि कारण में उसी चीज को ले लेवे तो उस में कोई भी दोष नहीं है।

प्यारे सज्जनो! इन दूण्ढी लोगों ने कितना सुहेला पन्थ ढूंढ निकाला है कि जो दोषदार चीज बिना कारण के लेवे तो दूण्ढियों की दृष्टि में वह पाप रूप है, और यदि उसी सदोष चीज को रोगादि कारण में लेवे तो इन की दृष्टि में कोई भी दोष नहीं है। अगर ऐसा ही माना जाए, फिर तो नियम धर्म का पालन करना कुछ भी कठिन नहीं है। इस उपरोक्त लेख के अनुसार तो साधु अपने निमित्त आहार या गरम पानी या सब्जी आदि पकवाकर और बीमारादि छूट कर

तय्यार की गई वस्तु ले लेवे, तो कारण में कोई दोष नहीं। जब गुरुओं का यह हाल है कि कारण में दोषदार चीज ले लेवें, तो उस में दोष नहीं तो उन के मतानुयायी गृहस्थों का कहना ही क्या है। और जिन की ऐसा धारणा है, सम्भव है वे ऐसा करते भी होंगे। ऐसी २ धर्म विरुद्ध बातें करने पर फिर भी अपने आप को प्राचीन जैन सिद्ध करना यह कितनी विचारणीय बात है। जो आपत्ति काल में भी नियम विरुद्ध वस्तु ग्रहण नहीं करते, और न ही उन के शास्त्र उन्हें ऐसा करने की आज्ञा देते हैं, ऐसे शुद्ध वीर शासन अनुयायी स्थानकवासी जैनों को समूर्छिम या नवीन बतलाना यह अज्ञानता और हठ नहीं तो और क्या है? प्यारे सज्जनों! यह तो वही कहावत हुई कि किसी कुरूपा स्त्री से किसी ने पूछा, "कि आप के यहां एक पद्मिणी रहती है। मैं उस के दूर देशान्तर से दर्शन करने के लिए आया हूं। आप मुझे बतला दीजिए कि वह पद्मिणी कहां है। कुरूपा स्त्री ने उत्तर दिया, "प्रिय महाशय! वह पद्मिणी मैं ही हूं और लोग मुझे ही पद्मिणी कहते हैं। यह सुन कर वह व्यक्ति

हँस कर बोला कि तेरे इस काले कुरूप सौन्दर्य से ही प्रतीत होता है कि सचमुच पद्मिनी तू ही है। यही बात यहाँ समझना।

४. शुद्ध स्थानक वासी जैन ही प्राचीन जैन हैं ॥

प्रिय सज्जनों! आज इस संसार में कई मान के भूखे व्यक्तियों ने अनेक प्रकार के कपोल कल्पित सिद्धान्त बनाकर उन कपोल कल्पित सिद्धान्तों के आधार पर अनेक प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित कर दिए हैं। जो सच्चे सिद्धान्तानुयायी शुद्ध जिनेन्द्र देव के फरमाए हुए यथार्थ मार्ग पर चलने वाले हैं, और हमेशा से चले आते हैं, वे तो अपने आप को प्राचीन अर्थात् अनादि रूप से चले आने का कहने का दावा करें, तो ठीक ही है, किन्तु जो शुद्ध संयम क्रियाओं का पालन न होने के कारण शुद्ध चारित्र से पतित हो कर नया मत चलाने वाले हैं, वे भी आज इस कलुकाल में अपने आप को प्राचीन सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। इतना ही नहीं, कि वे नवीन मतावलम्बी अपने को प्राचीन सिद्ध करने की चेष्टा करके ही इति श्री

कर देते किन्तु यहाँ तक झूठा साहस करते हैं और मिथ्या लेख लिखते हैं कि न केवल समाधि रूप से शुद्ध वीर शासनानुयायी चले आने वाले विशुद्ध जैनधर्मावलम्बी जैनों पर एक आक्रमण रूप होते हैं।

प्रश्न :—क्या किसी व्यक्ति ने शुद्ध वीर शासनानुयायी जैन स्थानक वासियों पर ऐसा झूठा आक्रमण किया है कि ये स्थानकवासी नवीन हैं?

उत्तर :—हाँ (देखिए इन्हीं वल्लभ विजय जी कृत "जैन भानु" प्रथम भाग) प्रथम भाग के प्रारम्भ में ही इन्हीं वल्लभ विजय जी लिखते हैं

"कि यद्यपि स्थानकवासी जैन अपने को जैनमतानुयायी ही कहते हैं, किन्तु वास्तव में स्थानकवासी जैन न जैन हैं और न ही ये जैन की शाखा हैं। बल्कि ये स्थानकवासी जैनाभास हैं,

क्योंकि इन का आचार, व्यवहार, वेष श्रद्धा और परूपणा सर्वथा जैन मत से विपरीत और निराली है । जिस का विस्तार पूर्वक वर्णन करना हम उचित नहीं समझते हैं। दण्डी जी ने यह भी लिखा है, "कि ये (स्थानकवासी) पन्थ वेगुरा और समूर्छिम वत है।" इसी प्रकार "भीम ज्ञान त्रिंशिका" नाम वाली पुस्तक के पृष्ट ४७ पर भी लिखा है, "कि जैन मत से बाहिर, बिना गुरु, एक गन्दा मुंह बन्दों का पन्थ, जैन मत को कलंक रूप जैनाभास ढूंढीए, व साधु मार्गी, व स्थानकपन्थी के नाम से प्रसिद्ध है।"

तेरे पर किस तरह झूठे ब्रह्मचारी के आक्रमण कपोल कल्पित मिथ्यात्वावलम्बियों के द्वारा हो रहे हैं। हाय! तेरी आंख अभी भी नहीं खुली। ऐ स्थानकवासी युवको और धर्म प्रेमियो! तुम्हारे लिये यह कितने खेद और शर्म की बात है कि तुम्हें इन्हीं ब्रह्म विजय जी ने तो न जैन बतलाया है और न तो जैन की शाखा बतलाई है बल्कि बेगुरा (जिस का कोई गुरु नहीं) पंथ बतलाया है और इन्हीं जी ने तुम्हारा आचार, व्यवहार, वेष तथा मुखपत्तिकादि को जैन धर्म से विपरीत और निराला बतलाया है। इतना कह कर इन्हों ने संतोष नहीं किया अपितु यहां तक लिखा है कि इन के आचार विचार जैसे हैं उन का मैं वर्णन करना उचित नहीं समझता।

इस भ्रान्ति जनक लेख से स्थानकवासी जैनों पर एक बड़ा भारी गोलमोल विस्फोटक आक्रमण किया गया है। अगर कोई जैन या अजैन इस लेख को पढ़े तो उस के चित्त पर कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा। पढ़ने वाले यही ख्याल करेंगे कि स्थानक

वासी जैन न मालूम शराब, मांस, वेश्या गमन, चोरी जारी आदि क्या २ कुकर्म करते होंगे ! जिस से दण्डी जी ने उन के आचार विचार का स्पष्टीकरण नहीं किया है। ऐ स्थानकवासी शुद्ध जैन-समाज ! दण्डी जी ने तुझे बेगुरो और समूर्छिम ठहराया है। इन शब्दों का मतलब है कि स्थानकवासियों का कोई गुरु नहीं है। ये बेगुरे हैं। समूर्छिम शब्द का अर्थ है कि जो जीव बिना मा बाप से बरसाती मेण्डकों की तरह मिट्टी पानी के मेल से यूं ही पैदा हो जायें। ऐ शुद्ध स्थानकवासी प्राचीन जैन समाज ! अब तो तुझे दण्डी जी ने बिना मा बाप से पैदा होने वाले समूर्छिम मेण्डकों की तरह बतला दिया है। इतना कुछ तेरे पर झूठा आक्रमण होने पर भी अगर तुझे होश न आई, तो फिर कब आएगी। यह लेख तो एक नमूना की शक्ल में तेरे सामने रक्खा है। ऐसे २ झूठे लेख दण्डियों की पुस्तकों में अनेक तरह के पाए जाते पुस्तक बढ़ने के भय से हम उन्हें यहां लिखना उचित नहीं समझते। आप लोगों को इस लेख से

चण्डी जी का विश्वप्रेम और जैन साधुओं की माया सुमति का विचार और तेरापंथ पाप अभ्याख्यान (झूठा कलंक) रूप से घृणा का होना आदि चण्डी जी के सब गुणों का पता चल गया होगा। और इस से इस हथेली में पड़ कर क्या कैसा है। जैसा कोई करेगा वैसा भरेगा। किए हुए कर्म वाली तो जाने ही नहीं हैं, वे अवश्य ही अधमगतियों में भोगने पड़ेंगे।

खेद तो हमें इतना ही है कि अपने आप को जैन कहलाने वाले ये दुमेरे लोग ऐसे २ झूठे आक्षेप अपने ही शुद्ध प्राचीन स्थानकवासी जैन भाइयों पर ही करें।

प्रिय सज्जनों! मूर्ति पूजक जैन श्वेताम्बरियों ने अपनी कपोल कल्पित पुस्तकों में जहां तहां आ यह मिथ्या प्रलाप किया है कि हम प्राचीन शुद्ध जैन मतानुयायी हैं और साधु मार्गी नवीन वेगुरे और सम्मूर्छिम जैसा जाल, जैन तो क्या ये जैन की शाखा भी नहीं हैं, अर्थात् स्थानकवासी शुद्ध जैन इस का उत्पि] ने तो की ।

भी स्वीकार नहीं की। अब इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

"स्थानकवासी जैन प्राचीन हैं, या ये पुजेरे दण्डी लोग" इस विषय पर प्रकाश डालने से पाठकगणों को स्वयं प्राचीन अर्वाचीन का पता लग जायगा, और दण्डियों के मिथ्या प्रलाप को भी अच्छी तरह समझ सकेंगे।

धर्म प्रेमी प्रिय पाठकगणों!

जैन धर्म की शुद्ध सनातन अनादि परम्परा को सिद्ध करने वाला श्री महामन्त्र नवकार मन्त्र से और कोई बलवान प्रमाण नहीं है। श्री नवकार महामन्त्र अनादि है। इस लिए शुद्ध वीरशासनानुयायी स्थानकवासी जैन भी अनादि ही हैं।

प्रश्न :—क्या स्थानकवासी जैनों के भी माने हुए प्रमाणिक ३२ जैन शास्त्रों में कहीं नवकार महामन्त्र का उल्लेख है ? हम ने तो कई मूर्तिपूजक पण्डितों से यही सुना है कि स्थानकवासी जैनों के माने हुए ३२ शास्त्रों में कहीं भी महामन्त्र नवकार नहीं लिखा है। क्या ऐसा कहने वालों का कहना गलत है ?

उत्तर—हां गलत नहीं तो और क्या ठीक है।

प्रश्न — क्या आप स्थानकवासियों के प्रमाणिक ३२ शास्त्रों में कहीं नवकार महामन्त्र का उल्लेख बतला सकते हैं ?

उत्तर :—हां क्यों नहीं। अगर कोई मूर्तिपूजक देखना चाहे तो हम उन्हें शास्त्र खोल कर दिखला सकते हैं।

प्रश्न —नवकार मन्त्र कौन से शास्त्र में लिखा है।

उत्तर श्री भगवती जी शास्त्र के प्रारम्भ में ही सब से प्रथम महा

मन्त्र नवकार के उल्लेख लिखे हुए हैं, इसी प्रकार जीवाभिगम, आदि शास्त्रों में नवकार महामन्त्र के उल्लेख हैं।

प्रश्न कर्ता का उत्तरः—अजी! मुझे तो इस विषय में बड़ी भ्रान्ति थी, वह आज सन्मूल दूर हो गई है, पर इससे स्थानकवासियों की प्राचीनता कैसे सिद्ध हो सकती है?

उत्तर —इसी बात को सिद्ध करने के लिए तो प्रमाणिक शास्त्रों से नवकार महामन्त्र सिद्ध करने की चेष्टा की गई है, अन्यथा इस ओर जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

प्रश्न.— तो इस से स्थानकवासियों की प्राचीनता कैसे सिद्ध हुई?

उत्तर —क्या आप नहीं समझे। अगर आप नहीं समझे, तो मैं इस का स्पष्टीकरण करके आप को समझा देता हूं। देखिए नवकार मन्त्र के पांचवें पद में णमो लोए सव्वसाहूणं शब्द

आया है जिस का मतलब है कि लोक में रहने वाले कनक, कामिनी और परिग्रह आदि से रहित हिंसात्मक पाप क्रियाओं से विमुक्त सभी साधु आत्माओं को नमस्कार हो। साधु शब्द का प्रयोग प्रायः करके प्राचीन शुद्ध स्थानकवासी जैन संप्रदाय के सच्चे साधुओं के लिए ही किया जाता है। जैसे कि आज भी यह बात प्रचलित है कि साधु मार्गी स्थानकवासी जैन इस से साफ सिद्ध हो गया कि साधु शब्द का प्रयोग स्थानक वासी जैनों में ही विशेष रूप से पाया जाता है अनादि प्राचीन नवकार मन्त्र में ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं आया कि णमो लोए यतियाणं णमोलोए सम्वेगियाणं, णमो लोए पिताम्बरीयाणं णमो लोए दिगम्बरियाणं णमो लोए सूरिणं, णमो लोए सागराणं णमो लोए विजयाणं। इस लेख से स्पष्ट भाव प्रगट हो जाता है कि स्थानकवासी जैन ही अनादि प्राचीन हैं। अगर मूर्तिपूजक वन्दी मतानुयायों का मत प्राचीन होता तो णमोलोए पद में साधु शब्द के स्थान पर सूरि- सागर,

सम्वेगी विजय अथवा पिताम्बरी आदि शब्द का प्रयोग किया हुआ होता । होता कैसे ! जब यह नवीन मूर्तिपूजक मतानुयायी पुजेरे लोग पहिले थे ही नही तो उन का कथन इस पवित्र महा मन्त्र में कैसे आ सकता था । और भी लीजिए :-शास्त्रों में चार मगल, चार उत्तम और चार सरण बतलाए हैं जैसे कि चत्तारि मंगल के पाठ में आया है यथा :-

"चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवली पन्नतो धम्मो मंगलं ।"

इसी तरह चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्ता लोगुत्तमा, सिद्धालोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवली पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमा, चत्तारिसरणं पवज्जामि, अरिहन्ता सरणं पवज्जामि, सिद्धासरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि, केवली पन्नत्तो धम्मो सरण पवज्जामि" इन उल्लेखों से भी यही बात स्पष्ट रूप

आया है जिस का मतलब है कि लोक में रहने वाले कनक, कामिनी और परिग्रह आदि से रहित हिंसात्मक पाप क्रियाओं से विमुक्त सभी साधु आत्माओं को नमस्कार हो। साधु शब्द का प्रयोग प्रायः करके प्राचीन शुद्ध स्थानकवासी जैन संप्रदाय के सच्चे साधुओं के लिए ही किया जाता है। जैसे कि आज भी यह बात प्रचलित है कि साधु मार्गी स्थानकवासी जैन इस से साफ सिद्ध हो गया कि साधु शब्द का प्रयोग स्थानकवासी जैनों में ही विशेष रूप से पाया जाता है अनादि प्राचीन नवकार मन्त्र में ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं आया कि नमो लोए पन्नियासाणं नमो लोए सम्वेगियाणं, नमो लोए पितम्बरीयाणं नमो लोए विमलविरियाणं नमो लोए सूरिणं, नमो लोए सागराणं नमो लोए विजयाणं। इस लेख से स्पष्ट भाव प्रगट हो जाता है कि स्थानकवासी जैन ही अनादि प्राचीन हैं। अगर मूर्तिपूजक दण्डी महानुयायों का मत प्राचीन होता तो नमोलोए पद में साधु शब्द के स्थान पर सूरि, सागर,

दृष्टि से होता, तो स्थानकवासी शास्त्रों या ग्रंथों में भी अवश्य ही होता, किन्तु ऐसा नहीं है। सूरि या सागरादि शब्द तो दण्डियों की जहाँ तहाँ पुस्तकों में इन्ही के द्वारा लिखे हुए पाए जाते हैं।

प्रश्न:-क्या मूर्तिपूजक लोग शुद्ध स्थानकवासी जैनों को नवीन मानते हैं?

उत्तर:-हां देखिए दण्डी आत्माराम जी कृत अज्ञानतिमिर भास्कर (द्वितीय खण्ड) पृष्ठ १६ पर लिखा है "कि स्थानकवासी ढूंढक पन्थ संवत १७०६ में निकला है। उधर दण्डी वल्लभ विजय भी अपने बनाए हुए **"जैन भानु"** के पृष्ट ३ पर लिखते हैं:-

+कि ढूंढीए लोग श्वेताम्बरी जैनियों में निकला हुआ एक छोटा सा फ़िरका

से सिद्ध होती है कि स्थानकवासी जैन ही अनादि प्राचीन हैं क्योंकि यहां भी साधु मंगल, साधु उत्तम और साधु शरण शब्द ही ग्रहण किये हैं अर्थात् संसार में पवित्र साधु महात्मा मंगल रूप हैं और उत्तम हैं और शरण ग्रहण करने योग्य हैं, किन्तु सूरि या सागर को मंगल उत्तम या शरण ग्रहण करने योग्य नहीं बतलाया है। भाई साहिब! अब तो आप समझ गए होंगे कि स्थानकवासी जैन ही अनादि प्राचीन हैं क्योंकि उन के माने हुए शास्त्रों में पुनः २ साधु शब्द का प्रयोग किया गया है। मूर्ति पूजक जैन यतियों के ग्रंथों में तो जहां *जहां साधु शब्द की जगह सूरि, सागर, विजय* इत्यादि शब्द ग्रहण किए गए हैं जो कि प्रमाणिक जैन शास्त्रों में दृष्टिगत नहीं होते।

शंका :—स्थानकवासी जैन साधुओं के लिए भी तो ढूंढक शब्द का प्रयोग किया गया है।

शंका का समाधान :—यह निन्दक मूर्तिपूजक यतियों का ही द्वेष वश प्रयोग किया हुआ शब्द प्रतीत होता है। अगर यह शब्द स्थानकवासी जैन

लिखते हैं :—

"कि जैन स्थानकवासियों का प्रारम्भ १७०८ में हुआ" उधर 'गप्प दीपिका समीर" (संवत १९६७ की लिखी हुई) नाम की पुस्तक के पृष्ट १७ पर लिखा है —

"कि ढूंढियों को चले हुए २३८ वर्ष हुए हैं और इसी पुस्तक के ४७ पृष्ट पर लेखक महाशय ने यह स्वीकार किया है कि ढूंढक मत की पटावली आज से कोई ४०० वर्ष पहिले की ही है, इस से पहिले की नहीं मिलती"

इस लेख से यह बात स्पष्ट हो गई कि गप्प दीपिका समीर के रचियता दण्डी ने स्थानकवासी जैनों को ४०० वर्ष से होना स्वीकार किया है" और उधर दण्डी आत्माराम जी अपनी बनाई हुई पुस्तक "जैन तत्त्वादर्श उत्तरार्द्ध के पृष्ट ५२६

है और यह मत कोई २५० वर्ष से निकला हुआ है।

उधर दण्डी ज्ञान सुन्दर जी "हां मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है नाम वाली पुस्तक के ८० पृष्ट पर

+देखिए मूर्खान्धता में जब जीव आता है, तब उसे पूर्वापर के विरोध का विचार नहीं रहता है जैन साधु नामक पुस्तक के प्रथम भाग के आरम्भ में ही दण्डी ज्ञान विजय जो स्थानकवासी जैनों के विषय में लिखते हैं, 'कि ये लोग न जैन हैं, न ही जैन की शाखा हैं, बल्कि जैनाभास हैं। और उसी पुस्तक के पृष्ट ३ पर दण्डी जी आप ही लिखते हैं "कि ढूंढीया नाम श्वेताम्बरी जैनियों में से निकला हुआ एक छोटा सा फिरका है" सच कहा है जब जीव के मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय होता है तब उसे कुछ भी समझ नहीं पड़ती। देखिए दण्डी ज्ञान विजय जी के लिखित लेखही परस्पर में एक दूसरे के कितने विरोधी हैं।

लिखते हैं :-

"कि जैन स्थानकवासियों का प्रारम्भ १७०८ में हुआ" उधर 'गप्प दीपिका समीर' (सवत १९६७ की लिखो हुई) नाम की पुस्तक के पृष्ट १७ पर लिखा है -

"कि ढूंढियों को चले हुए २३८ वर्ष हुए हैं और इसी पुस्तक के ४७ पृष्ट पर लेखक महाशय ने यह स्वीकार किया है कि ढूंढक मत की पटावली आज से कोई ४०० वर्ष पहिले की ही है, इस से पहिले की नहीं मिलती"

इस लेख से यह बात स्पष्ट हो गई कि गप्प दीपिका समीर के रचियता दण्डी ने स्थानकवासी जैनों को ४०० वर्ष से होना स्वीकार किया है" और उधर दण्डी आत्माराम जी अपनी बनाई हुई पुस्तक "जैन तत्त्वादर्श उत्तरार्द्ध के पृष्ट ५३६

पर लिखते हैं :—

"कि ढूंढक मत १७१६ से १७४६ के बीच में निकला है" इन्हीं आत्माराम जी के इस लेख से अधिक से अधिक स्थानक वासियों को निकले हुए २८४ वर्ष बैठते हैं।

क्या ही गुरु चेले ने गड़बड़ की खिचड़ी पकाई है! क्योंकि गुरु चेले का परस्पर एक का दूसरे से लेख नहीं मिलता है। अब इन्हीं आत्माराम जी और उन के पट्टधर इन्हों वल्लभ विजय जी इन दोनों के लेख भी आपस में नहीं मिलते हैं। शिष्य कुछ और लिखता है, गुरु कुछ और ही लिखता है। जब इन दोनों गुरु चेलों की आपस में ही एक दूसरे से सम्मति नहीं मिलती, इस से तो यही सिद्ध होता है कि एक को दूसरे पर विश्वास नहीं है। जब यह गुरु चेले आपस में एक सम्मति रूप होकर आपस के लेखों के विरोध का ही साफ़ नहीं कर सके, एक का लेख दूसरे के लेख का विरोध कर रहा है ऐसी व्यवस्था में दूसरों के

लिए अर्वाचीन और प्राचीन के निर्णय का यह दोनों गुरु चेले क्या दावा कर सकते हैं। गुरु चेले दोनों के लेखों में परस्पर रूप से बड़ा भारी अन्तर है। अब किस को सत्यभाषी माना जाए और किस को मिथ्याभाषी? असल बात यह है कि जब जीव के मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय होता है, तो उसे पूर्वापर के विरोध का भी भान नहीं रहता। मिथ्यातोदय से ऐसा हो जाना एक स्वभाविक बात है। मदछकित मनुष्य की बुद्धि जिस तरह ठीक व्यवस्था में नहीं रहती, मिथ्यात्व का प्रभाव भी मनुष्य के दिल पर वैसा ही पड़ता है। हमें इतना खेद प्राचीन शुद्ध स्थानकवासियों को नवीन बतलाने का नहीं है, जितना कि साधु के भेष में होकर मिथ्या भाषण पर है। जो चीज सही है, वह सही ही रहती है। किसी करोड़पति को कोई दीवालिया कहे, तो उस द्वेष बुद्धि व्यक्ति के कहने से जिस के घर में करोड़ रुपया की रक़म पड़ी हो, वह किसी के कहने से दीवालिया या निर्धन नहीं हो जाता। साहूकार और दीवालिए

का पता तो नफ़ा के नुकसान के समय पर ही लगता है कि कौन दीवालिया है और कौन धनाढ्य है ! इसी तरह अर्वाचीन प्राचीन का भी पता तभी लगता है,जब भगवान् वीर स्वामी के पूर्ण अहिंसा मय धर्म और देव गुरु सम्बंधी सही प्रमाण का मुकाबला किया जाए । अगर भगवान् महावीर स्वामी जैन धर्म के प्रचारक तीर्थंकर देव मूर्ति पूजक होते तो भगवान् महावीर जी के बतलाए हुए प्रमाणिक ३२ जैन शास्त्रों में भी तीर्थंकर मूर्तिपूजा का विधान होता । जब भगवान् महावीर स्वामी जैन धर्म के नेता और सच्चे धर्म प्रचारक मूर्तिपूजक नहीं थे, तो जैन धर्म में तीर्थंकर मूर्तिपूजा का होना यह किसी व्यवस्था में भी सिद्ध नहीं हो सकता । भगवान् महावीर स्वामी ने मानव जीवन के कल्याण के लिए अनेक प्रकार के धार्मिक क्रियानुष्ठान बतलाए हैं किन्तु जड़ मूर्तिपूजा का आत्मकल्याण के लिए किसी भी प्रमाणिक शास्त्र में कथन नहीं किया है । श्री दशवैकालिक शास्त्र जो कि भगवान्

महावीर स्वामी ने अपने निर्वाण काल के समय कार्तिकवदि अमावस की रात्रि को अपने मुक्त कण्ठ से फरमाया था, उस के अध्ययन २९वें में श्री भगवान् महावीर स्वामी ने ७३ बोलों का फलादेश बतलाया, अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, चौवीसस्था, प्रतिक्रमण, आलोचनादि धर्म क्रियाओं को मोक्ष प्राप्ति रूप बतलाया, किन्तु मन्दिर बनवाना या मूर्तिपूजा का करना कहीं पर भी इन ७३ बोलों केकथनमे नही आया है। अगर मूर्तिपूजा मोक्ष देने वाली होती, तो यहां पर भी भगवान् उस का कथन करते। करते कैसे! अगर जड़मूर्त्ति पूजा मोक्ष देने वाली होती, तब तो कथन किया जाता। भगवान् ने तो सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र को ही मोक्ष प्रदाता माना है। जड़मूर्त्ति न सम्यक् ज्ञान रूप है, न ही सम्यक् दर्शन रूप है, और न ही सम्यक् चारित्र रूप है। उपरोक्त तीनों गुणों से प्रतिमा शून्य है,अत उस से क्या मिल सकता है!जड़ की पूजा द्वारा जड़ बुद्धि होने के सिवा उस से और कुछ भी प्राप्ति नहीं हो

सकती।और भी उत्तराध्ययन सूत्र के २६वें अध्याय में साधु की दिन रातमें करने योग्य इस प्रकार की समाचारी स्पष्ट रूप से कथन की गई है और इसी अध्ययन में साधु के जीवन का कार्यक्रम भी भगवान् ने सुचारुभांति से बतलाया है, कि अमुक २ कार्य अमुक २ समय में करना, किन्तु चैत्यवन्दनादि का इस अध्याय म भी कोई कथन नहीं आया। इसी अध्ययन की २१वी गाथा के एक लेख में भगवान् महावीर ने आत्मकल्याण के लिए स्वाध्याय और गुरु वन्दना तो बतलाई है किन्तु चैत्य वन्दना का नाम तक भी नहीं है। देखिए वह लेख यह है :—

"गुरुं वन्दित्तु, सज्झाय, कुज्जा दुक्ख विमोक्खणं।"

इस लेख का भावार्थ है, "कि ज्ञान, ध्यान संयुक्त सच्चे गुरु देव को नमस्कार करके फिर आत्मकल्याण के कर्ता सच्चे शास्त्रों की स्वाध्याय करे जो कि सर्व दुःखों का नाश करने वाली है।

यहा भी स्वाध्याय को ही दुःखों से विमुक्त करने वाली बतलाया है, किन्तु चैत्य वन्दना को दुःख विमोचन करने वाली नहीं बतलाया, पाठकगणों को इस उपरोक्त लेख से भली प्रकार पता चल गया होगा कि स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी ही प्राचीन हैं।

यह दण्डी मत तो भगवान् महावीर स्वामी के बहुत समय के बाद १२ वर्ष आदि कालापत्ति के कारण साधु वृत्ति पालन न होने से निकला है। न ही भगवान् महावीर स्वामी मूर्तिपूजक थे, और न ही उन्हों ने मूर्तिपूजा का उपदेश दिया था। यही कारण है कि शुद्ध वीर शासनानुयायी स्थानकवासी जैनों में न ही मूर्तिपूजा को मोक्षप्राप्ति के लिए प्रवृत्ति है, और न ही मूर्तिपूजा का उपदेश है।

देखिए पुराण कर्ता व्यास जी जिन को अनुमान ५००० वर्ष का समय हो गया है, शुद्ध सनातन जैन साधुओं

के असली वेष के विषय में क्या कहते हैं ।

"मुण्डमाधिन वस्त्रंच,कुण्डिपात्र समन्वितं,
दधानं पुञ्जिकहस्ते, चालयन्ते पदे पदे"

इस श्लोक का भाव है "कि सिर मुण्डित मैले (रंग बिन हुए) वस्त्र काष्ठ के पात्र हाथ में रजोहरण (ओघा) पग २ पर रख कर चले अर्थात् रजोहरण से कीड़ी आदि जन्तुओं को हटा कर पग रखे" और भी कहा है :—

वस्त्र युक्त तथा हस्तं क्षिप्यमार्ग मुखे सदा,
धर्मोंप्रति व्याहरन्तसं नमस्कृत्य स्थित हरे।

इस श्लोक का भावार्थ है, "कि मुखवस्त्र (मुखपत्ति) करके रखे हुए सदा मुख को तथा किसी कारण मुखपत्ति को भोजनादि समय में अलग कर तो हाथ मुख के आगे रखे, परन्तु खुले मुख न रहे और न बोले।" इन श्लोकों के अर्थ से स्थानकवासी मुख पर हमेशा मुखपत्ति

लगाने वाले साधुओं का ही चिह्न सिद्ध होता है पीले वस्त्र और हाथ में लट्ठ और हाथ में इ मुहपत्ति का नाम लेकर एक कपड़ा रखना, ऐसे वेषधारी अपने को जैन साधु कहलाने वाले इण्डियों के वेष की सिद्धि इन श्लोकों से भी नहीं होती, जिन का ऐसा कहना है कि स्थानकवासी २५० या ४०० वर्ष से ही निकले हैं, ये बात सर्वथा मिथ्या है। पांच हजार वर्ष की स्थानकवासी जैन साधुओं के होने की सिद्धि तो पुराण कर्ता व्यास जी के लेख ही बतला रहे हैं। इतने स्थानकवासी जैनों की प्राचीनता सिद्धि के प्रमाण मिलने पर भी यदि प्रतिपक्षी मताग्ध दण्डियों के नेत्र नहीं खुले तो इस में किसी का क्या दोष है। दुर्भाग्य से सूर्योदय होने पर भी उल्लू को नजर न आए, तो इस में किसी का क्या दोष।

---

५ हां मुखपत्ति मुख पर बांधनी ही जैन शास्त्रोक्त है।

प्रश्न :—आपको मुखपत्ति के विषय में आप का क्या विचार है? धागा डालकर मुख पर बांधनी चाहिये या हाथ में रखनी चाहिए?

उत्तर :—आपने यह बात आप ने खूब पूछी कि मुखपत्ति धागा डालकर मुख पर बांधनी चाहिए या हाथ में रखनी चाहिए। क्या आप को इतना भी पता नहीं है कि मुखपत्ति मुख पर बांधने से ही हो सकती है अन्यथा नहीं, नाला डालने से ही पाजामा काम में आ सकता है अन्यथा नहीं, इसी प्रकार मुंहपत्ति धागा डालने से ही काम में आ सकती है अन्यथा नहीं। मुख पर रहे तो मुखपत्ति हाथ में रहे तो हस्तपत्ति। जिस तरह सिर पर रहे तो पगड़ी गले में पहना जाय तो अङ्गरखा कमर में बांधी जाय, या धोती, पावों में पहनी जाय, तो पगरखी (जूती)। सिर

की पगड़ी को ही पगड़ी कहा जाएगा, किन्तु कमर से सम्बंधित धोती को पगडी नहीं कहा जाएगा। और न ही पावों से सम्बन्ध रखने वाली पगरखी (जूती) को धोती कहा जाएगा। इसी तरह धागा डालकर मुख पर बांधने से ही मुखपत्ति कहला सकती है। हाथ में लेने से हाथपत्ति, कमर में पहने हुए चोलपट्टे में टांग लेने से कमरपट्टी ही कहलाएगी, उसे कौन बुद्धिमान पुरुष मुखपत्ति कह सकता है? मुख पर लगाने से ही मुखपत्ति का भाव सिद्ध हो सकता है। अगर कोई मनुष्य कमर में लगाई जाने वाली धोती खोलकर हाथ में ले ले, तो नग्नाच्छादन का मतलब पूरा नहीं हो सकता। इसी तरह हाथ म मुखपत्ति रखने से वायुकाया की रक्षा रूप कार्य हाथपत्ति से सिद्ध नहीं हो सकता, और जो, "हां मूर्त्तिपूजा शास्त्रोक्त है, "इस नाम की पुस्तक मे मुखपत्ति के विषय में दोष बतलाए गए हैं, वे सम्मूल मिथ्या हैं। उस पुस्तक में लिखा है "कि मुखपत्ति लगाने से असंख्य त्रस जीव पैदा हो जाते हैं, स्पष्ट बोला

भी नहीं माता और मुखपत्ति का बांधना लोगों में निन्दा का कारण है।

सज्जनों !

मुख पर मुखपत्ति बांधने से त्रस जीव पैदा नहीं हो सकते हैं, क्योंकि मुख की गरम हवा मुखपत्ति पर पड़ती रहती है इस लिए उस गरमाई के कारण त्रस जीव पैदा नहीं हो सकते। जो यह लिखा है कि स्पष्टतया बोला नहीं जाता यह बात भी सर्वथा मिथ्या है क्योंकि स्थानकवासी जैन साधु मुख पर मुखपत्ति के होते हुए भी जहां बीस २ तीस २ हजार की जनसंख्या में लोग लोडस्पीकर(Load Speaker)से काम लेते हैं वे बिना लोडस्पीकर ही स्पष्ट और प्रचण्ड रूप से अपनी आवाज़ तमाम जनता तक पहुंचा देते हैं और जो तीसरी बात यह लिखी है कि मुखपत्ति बांधने से लोगों में निंदा होती है यह भी एक भ्रान्ति ही है। हमें जिनाज्ञा पालन करनी है या लोगों को प्रसन्न करना है।

मुखपत्ति मुख पर बांधने में कोई भी दोष

नहीं, अपितु बहुत सारे गुण हैं। जैसे कहा भी है:-

दोहा :-

मुखपत्ति में तीन गुण,
जैन लिंग, जीव रक्ष,
थूक पड़े नहीं शास्त्र पर,
तीनों गुण प्रत्यक्ष ॥

अर्थात् त्रस और वायुकायादि जीवों की रक्षा, शास्त्र पर थूक का न पड़ना, और सच्चे जैन साधुओं की निशानी, ये तीनों गुण मुखपत्ति में ही कहे हैं, किन्तु हाथपत्ति में नहीं। मुखपत्ति मुख पर बांधने के विषय में इन दण्डी लोगों की तरफ से हमारे पास बहुत सारे प्रमाण हैं। जिन में से केवल एक या दो लेख ही हम यहां दे रहे हैं।

देखिए "मुंहपत्ति चर्चा सार" (गुजराती भाषा में) पुस्तक जिस के मुख्य संग्रह कर्ता पन्यास श्री रत्न विजय जी गणि हैं और प्रकाशक

श्री विजयनीति सूरि जैन पुस्तकालय रीची रोड अहमदाबाद)।

मुंहपत्ति चर्चा सार पुस्तक में जो कि हमारे लोगों की ओर से ही अहमदाबाद से छपी है उस में मुख पर मुंहपत्ति बांधने के प्राचीन बहुत सारे उदाहरण मिलते हैं।

"मुंहपत्ति चर्चा सार" नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है –

"कि लग भग आज से ७५ या ८० वर्ष पहिले श्वेताम्बर मूर्त्ति पूजक संघ में कोई भी गच्छ या समुदाय या उपाश्रय ऐसा नहीं था कि जिस में मुख पर मुंहपत्ति बांधे बिना व्याख्यान किया जाता हो, या सुनने वाले बिना मुख पर मुंहपत्ति बांधे सुनते हों। आज

भी मुंहपत्ति बांध कर ही व्याख्यान वांचना या सुनना कल्पता है । ऐसा मानने वाले और इस मान्यता को चुस्तपने से बनाई रखने वाले श्रावक, श्राविका, साधु, साधवी का समुदाय अस्तित्त्व रखता है (अर्थात् आज भी विद्यमान है) उन में से मुख्य २ स्थल अहमदाबाद, पालीताना, पाटन, ऊंझा, पेथापुर, फिलोधि आदि कच्छ देश के अमुक स्थान प्रसिद्ध हैं। आगे चल कर इसी भूमिका में स्पष्ट रूप से लिखा है कि मुंहपत्ति बांधने की प्रवृत्ति केवल अंध प्रवृत्ति या गतानुगति

प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु पूर्वापर से चली आई है, प्रसिद्ध २ सर्व सुविहित आचार्यवरों की मान्य और सशास्त्रीय वृत्ति है, और इसी लिए वह शास्त्र में अन्तर्गत होने से तीर्थरूप है, और इसी भूमिका में इस बात का भी स्पष्टीकरण किया है कि "जैन धर्म प्रकाश" पत्रकारों ने अनजानपने से लिखा डाला है "कि मुंहपत्ति की अयोग्य प्रवृत्ति को पंजाब से आए हुए नवीन मुनियों ने तोड़ा।"

इस लेख से यह भाव निकलता है कि जब दण्डी वल्लभ विजय जी के मान्य गुरु दण्डी आत्मा राम जी आदि स्थानकवासी इस पवित्र लिंग को

छोडकर दण्डी वाणा धारण करके कच्छ आदि देशों में आकर पुजेरे सम्प्रदाय में मुह पर मुखपत्ति बांधने की पवित्र प्रथा को जो कच्छ आदि देशों में चली आती थी, तोडा। हां २ ठीक है। ऐसा होना भी तो बहुत कुछ सम्भव था, क्योंकि दण्डी आत्माराम जी मुहपत्ति तोडकर हाथपत्ति वाले दण्डी बने थे, जिस ने स्वयं मुहपत्ति तोडी हो, यदि वह दूसरों की तुडावे, तो इस में आश्चर्य ही क्या है ! जो स्वयं जैसा होता है, वह औरों को भी अपने जैसा बनाने की चेष्टा किया ही करता है। भूमिका लेखक का आशय है, ' कि ऐसी मिथ्या धारणा दूर हो, कि जिस से मुखपत्ति बांधने की शुभ प्रवृत्ति को अयोग्य प्रवृत्ति भाव देकर मुहपत्ति तोडने की चेष्टा की जाती हो।" भूमिका में आगे आकर लिखा है कि पन्यास श्री रत्न विजय जी महाराज के पास हस्तलिखित एक ग्रंथ है, जिस में मुख पर मुहपत्ति बांधने के बहुत सारे प्रमाण हैं।

पाठकगणों ! ये जो कुछ मुख पर मुखपत्ति

बांधने की पुष्टि के प्रमाण इस भूमिका में दिए गए हैं वे पुजेरे लोगों की तरफ से ही छपे हुए प्रमाण हैं । 'मुंहपत्ति चर्चा सार' नाम वाली पुस्तक में मुख पर मुंहपत्ति बांधी हुई है ऐसा श्री हीर विजय जी सूरि का चित्र है और उस के नीचे उन के चेले का चित्र है। चेले ने भी मुखपत्ति मुंह पर लगाई हुई है। उसी जगे हीर विजय जी के मुखपत्ति संयुक्त चित्र के सामने अकबर बादशाह का चित्र देकर नीचे लिखा है कि श्री हीर विजय जी अकबर बादशाह को उपदेश दे रहे हैं, जिस को अनुमानतः ३२५ वर्ष का समय हो चुका है। "मुंहपत्ति चर्चा सार" नामक पुस्तक में और भी बहुत सारे पुजेरे साधुओं के चित्र हैं। उन्हों ने मुख पर मुखपत्ति बांधी हुई है, और उन का वेष भी श्वेत है। इन पुजेरे साधुओं के चित्र के पास कोई भी दण्ड आदि दूसरी साधुओं का विशेष चिह्न नहीं है। इन चित्रों से स्पष्ट स्थानकवासी शुद्ध प्राचीन जैनों का ही श्वेत वेष प्रकट होता है।

---

९. मुख पर मुखपत्ति बांधने के विषय में दण्डी वल्लभ विजय जी की हस्त लिखित चिट्ठी ॥

दण्डी आत्मा राम जी ने भी मुखपत्ति मुख पर बाधनी ही स्वीकार की है। देखिए उन की निम्नलिखित चिट्ठी की नकल उस का प्रमाण दे रही है।

एक पुजेरे आलम चन्द नाम के साधु ने मुखपत्ति के विषय में दण्डी आत्मा राम जी से उन की निज की सम्मति पत्र द्वारा माँगी थी, तो दण्डी वल्लभ विजय के मान्य गुरु दण्डी आत्माराम जी ने पुजेरे साधु आलम चन्द जी को पत्र द्वारा अपने शब्दों में जो उत्तर दिया है। उस चिट्ठी की नकल आगे दी जाती है इस को पढकर पाठकगणों

को अच्छी तरह पता चल जाएगा कि ढूण्ढी वल्लभ विजय के मान्य गुरु ढूण्ढी आत्माराम जी ने भी मुंहपत्ति मुख पर लगानी ही स्वीकार की है।

चिट्ठी की नक़ल :—

श्री मु० सूरत बंदर

मुनि श्री आलम चन्द जी योग्य लि० आचार्य महाराज श्री श्री १००८ श्री मद्विजयानन्द सूरीश्वर जी (आत्मा राम जी) महाराज जी आदि साधु मंडल ठाने ७ के तरफ से वंदणा ऽनुवंदणा १००८ वार वाचनी। चिठी तुमारी आइ समेचार सर्व जाणे हैं। यहा सर्व साधु सुख साता में है, तुमारी सुखसाता का समचार लिखना—

मुहपत्ति विशे हमारा कहना इतना हि है कि मुहपत्ति बांधनी अच्छी है और घणे दिनों से परंपरा चली आई है, इन को लोपना यह अच्छा नहीं है।

हम बांधनी अच्छी जाणते हैं परंतु हम ढूंढीए लोक में सें मुहपत्ति तोड़के नीकले हैं इस वास्ते हम बांध नहीं सक्के हैं और जो कदी बांधनी इच्छीए तो यहां बड़ी निन्दा होती है और सत्य धर्म में आये हुए लोकों के मन में ढील चली हो जावे, इस वास्ते नहीं बांध सक्के हैं सो जाणना ॥

अपरंच हमारी सलाह मानने हो

तो तुम को मुंहपत्ति बांधने में कुछ भी हानि नहीं है । क्योंकि तुमारे गुरु बांधते हैं और तुम नहीं बांधो यह अच्छी बात नहीं है । आगे जैसी तुमारी मरज़ी, हम ने तो हमारा अभि प्राय लिख दिया है सो जाणना ।

और हम को तो तुम बांधो तो भी वैसे हो और नहीं बांधो तो भी वैसे ही हो परं तुमारे हित के वास्ते लिखा है आगे जैसी तुमरी मरजी ।

१६४७ कत्तक वदि०))वार सुभ दसखत वल्लभ विजय की वंदणा वांचनी । दीवाली के रोज दस बजे चिठी लिखी है

(इस उपरोक्त चिट्ठी के थोडे से लेख में ही ठाम २ पर बहुत सी अशुद्धियां भरी पडी हैं, जैसे की निकले हैं के स्थान पर नीकले हैं, तुम्हारी के स्थान पर तुमारी, दिया की जगह दीया है। चिट्ठी के स्थान पर चिठी, आई की जगह आइ, समाचार की जगह समचार, विषय के स्थान विशे, इत्यादि बहुत सारी अशुद्धिया हैं जो स्थाना भाव के कारण हम ने यहां पर नही दी है। प्यारे सज्जनों जिस व्यक्ति के विषय में पण्डित्य भाव की डिलखोलकर इतनी डींगे मारी गई ओ व्यक्ति विद्यावारिधि, अज्ञानतिमिर तरिणी आदि उपाधियों से अलकृत माना जाता हो क्या यह एक पूर्वोक्त अशुद्धियों का उस व्यक्ति के विषय में पण्डित्य और विद्वतान्त दर्शक का पूर्ण उल्लेख नही है। वाह २ ऐसे २ अशुद्ध लेखक और वक्ता को यदि बडी २ उपाधियों से अलकृत किया जाए, यह एक मूर्ख समाज का प्रमाण नहीं तो और क्या है। आज कल के तीसरी चौथी श्रेणि के बालक बालिकाएं भी ऐसी अशुद्धियों का काफी अनुभव कर सकते हैं, किन्तु

पद मान्य व्यक्ति ऐसी अशुद्धियों का बोध न रक्खे यह कितनी विचारणीय बात है। प्रिय सज्जनों ! इस उपरोक्त श्लोक की अशुद्धियों से मूर्तिपूजक लोगों के श्रीमान् आचार्य जी की विद्वत्ता का पूर्णतया पता चल जाता है कि यह कितने योग्य और पण्डित्य भाजी हैं हमें इस ओर विशेष लक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं है। हमारा तो मुख्य उद्देश्य मुखपत्ति की सिद्धि से ही है।)

यह उपरोक्त चिट्ठी "जैनाचार्य श्री आत्मा नन्द जन्म शताब्दि स्मारक ग्रंथ के गुजराती विभाग के पृष्ट १२४ से नकल की गई है। यदि किसी को शंका हो तो वह उपरोक्त पुस्तक का उपरोक्त पृष्ट देखकर अपनी शंका का समाधान कर ले)।

यह उपरोक्त चिट्ठी बल्भी विजय जी के अपने हाथों की लिखी हुई है। इन के मान्य गुरु बुल्टी आत्माराम जी तो मुख पर मुंहपत्ति बांधने को इस पत्र द्वारा सिद्ध कर रहे हैं। यदि कोई बल्ही का शिष्य होकर अपने गुरु के लेख का विरोध करके यह कहे कि मुखपत्ति मुख पर बांधनी

नही चलो है, हाथ में रखनी चाहिए, यह एक अपने ही गुरु की अविनय करनी है।

—o—

दान देते समय :

श्री जैन माटरन स्कूल को भी

याद रखें ॥

७ क्या पुजेरे लोग गंगा यमुनादि के स्नान से पाप रूप दोष निवृत्ति मानते हैं ?

अब हम वणियों के उस झूठे दम्भ का खुलासा कर देना भी उचित समझते हैं कि जो अपने आप को ही सच्चे जैन कहलाने का दम भरते हैं। देखिए नीचे का अवतरण :—

"कि स्थानकवासी जैन साधु घासी राम और जुगल राम को जोकि स्थानकवासी कठिन साधुवृत्ति से भ्रष्ट हो चुके थे, उन को पुजेरों ने गंगा स्नान कराके शुद्ध किया। फिर उन्हें अमृतसर में लाया गया और फिर

उन्हें पिताम्बरी दिक्षा दी गई।

प्रमाण के लिए देखिए ईस्वी सन १९०८ फरवरी ता० १ आत्मानन्द जैन पत्रिका का पुस्तक नवमा अंक तीसरे का लेख नीचे मूजब प्रकरण १९ मा।)

पाठकगणों को इन जड़ पूजकों की करतूत का पता चल गया होगा कि इन को महामन्त्र नवकार पर और अपने अहिंसामय शुद्ध जैन धर्म पर विश्वास नही है। यदि होता तो उन दो पतित व्यक्तियों को शुद्धि के लिए गंगा भेजने की झूठी चेष्टा न करते। वास्तव में बात यह है कि ये मूर्ति-पूजक जो अपने आप को जैन कहलाते हैं, ये गंगा यमुनादि तीर्थों पर स्नान करने से पाप निवृत्तिरूप शुद्धि नही मानते हैं, बल्कि गंगा यमुना में आत्म शुद्धि निमित्त स्नान करने को मिथ्यात्व (अज्ञानता) मानते हैं। उन दो संयम भ्रष्ट व्यक्तियों को जिन को गंगा स्नान के लिए ले जाया गया, इस का कारण केवल स्थानकवासी जैनों के दिल को आघात पहुंचाना था। आप लोगों को इन की

उदारता का पता लग गया होगा कि ये लोग कितने महावीर स्वामी के असली सिद्धान्त पर चलने वाले हैं। जिन दोनों व्यक्तियों ने बहुत समय तक ब्रह्मचर्य, हिंसा परित्याग आदि विशुद्ध गुणों का पालन किया था, उन को ही इन लोगों ने अशुद्ध माना। यदि मानव संयमादि गुणों के धारण करने से अशुद्ध हो सकते हैं तो क्या चोरी जारी आदि दुर्गुणों से शुद्ध होंगे ? नहीं नहीं ये इन लोगों की सरासर हठ और मिथ्यात्व दोष की प्रबलता है। अच्छा इन ढुण्ढी लोगों ने उन दो व्यक्तियों को तो गंगा जी स्नान करवाकर उन्हें शुद्ध मानकर अपनी मूर्खता का परिचय दे दिया है। किन्तु ढुण्ढी आत्मा राम जी भी तो अनुमान २२ वर्ष तक शुद्ध स्थानकवासी जैन साधुओं में रहकर ज्ञान प्राप्त कर और स्थानकवासी गृहस्थों के टुकड़ों से पोषित होकर संयम के न पलने से संयम से पतित हो दण्डियों में दीक्षित जा हुए थे। क्या ढुण्ढी आत्माराम जी को भी पुजेरे भाइयों ने गंगा स्नान कराके शुद्ध किया था ? यदि गंगा स्नान से

हम लोगों ने घासी राम और मुगल राम को गंगा स्नान से शुद्ध कर लिया था । गंगा यमुना के स्नान में शुद्धि मानने वाले पुजेरे लोग जैन नहीं हो सकते हैं क्योंकि पुजेरे मूर्तिपूजकों का सिद्धांत तो गंगादि जल से पाप निवृत्ति नहीं मानता है । फिर न मालूम किस अज्ञानता के कारण गंगा यमुना आदि जल से दोष निवृत्ति रूप शुद्धि मानने वाले ये लोग अपने आप को जैन कहलाने का दम भरते हैं । सारांश यह निकला कि जो पुजेरे लोग गंगा यमुनादि जलाशयों के स्नान में दोष निवृत्ति रूप शुद्धि मानते हैं वे जैन कहलाने का अधिकार नहीं रखते हैं और न ही ऐसे गलत विश्वास वाले पुजेरे लोग भगवान् की दृष्टि में जैन हैं ।

---

८. पुजेरे और सनातन धर्म की मूर्त्तिमान्यता में विशेष अन्तर ।"

पुजेरे लोगों का जो जड़मूर्त्ति को अरिहन्त भगवान् मानने का मिथ्या विश्वास है, अब इस पर भी थोड़ा सा प्रकाश डालना हम परमावश्यक समझते हैं। जड़मूर्त्ति में अरिहंत भगवान् का सद् भाव हो ही नहीं सकता है ऐसा तो शुद्ध प्राचीन स्थानकवासी जैनों का विश्वास है ही, पर दण्डी वल्लभ विजय जी के मान्य गुरु दण्डी आत्माराम जी भी इस विषय ऐसा ही लिखते हैं। देखिए जैनतत्त्वादर्श (पूर्वार्द्ध) द्वितीय परिच्छेद पृष्ट ७६ पर आत्मा राम जी कुदेव का लक्षण किस प्रकार करते हैं।

कर दिया है।" इस लेख से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गई है कि जड़ मूर्ति भगवान् नहीं है। उस में भगवान् की कल्पना कर लेना यह एक बड़ी भारी भूल है। इस लिए जड़मूर्ति को तीर्थंकर भगवान् की कल्पना करके भूल कर भी नहीं पूजना चाहिए और न ही उस में भगवद्भावी गुणों की बुद्धि रखनी चाहिए और इसी ग्रंथ (जैन तत्त्वादर्श) में पूज्यो आत्मा राम जी लिखते हैं, 'कि जो पुरुष जैसा होता है उस की मूर्ति भी वैसी ही होती है। जिस के पास धनुष बहर त्रिशूल, जपमाला और कमण्डल आदि होवे वह राग द्वेष वाला देव है।" भाव यह हुआ कि वह देव बुद्धि से मानने योग्य नहीं है। यह आक्षेप पूज्यो आत्मा राम जी ने वास्तव में सनातन धर्म के माने हुए देवों और अवतारों पर किया है। यदि पूज्यो आत्माराम जी ठण्डे दिल से विचार लेते तो उन्हें बनावटी अपने वीतरागदेवों का पता भी चल जाता। यदि त्रिशूलादि धारण करना रागी द्वेषी देव के चिह्न हैं तो मुकट अंगिया हारादि से

सुसज्जित दण्डियों के मन्दिरों में जो मूर्त्तियां हैं, वे वीतरागी कैसे हो सकती हैं और उन्हें सुदेव कैसे कहा जा सकता है? सिर पर मुकट, गले मे हार और कड़िया अभियादि पहनना ये सब भोगी राजा के चिह्न हैं। ऐसे भोग अवस्था भावी, मुकट धारी, बनावटी तीर्थंकर देव से मोक्ष फल की इच्छा रखना भी तो एक बडी भूल है क्योंकि ये मुकट आदि तो भोगी के चिह्न हैं। ऐसे मनोहर शृ गारों से सुसज्जित कल्पित जैन तीर्थंकर मूर्ति भोगावस्था को हीप्रकट कर रही है। विचारणीय बात तो यह है कि औरों की त्रिशूलादि चिन्ह संयुक्त मूर्त्ति को तो कुदेव कहा जाता है और अपनी मुकटधारी मूर्त्ति को सुदेव कहते हैं। यह तो वही बात हुई कि दूसरे की छाछ मिट्ठी, तो भी खट्टी, और अपनी छाछ खट्टी तो भी मिट्ठी।" यह मतान्धता नहीं, तो और क्या है? दण्डी आत्माराम जी ने "अज्ञान तिमिर भास्कर" मे गुरु नानक देव कबीर जी, दादूदयाल, गरीब दास, ब्रह्मसमाजी,

और वैदिक आदि मतों की खूब दिल खोलकर निन्दा की है। ऊपर से तो यह पुजेरे लोग मूर्ति पूजक सनातनधर्मावलम्बियों को यह कहते हैं कि हम तुम एक ही हैं क्योंकि तुम भी मूर्तिपूजक हो और हम भी मूर्तिपूजक हैं, भीतर से इन लोगों ने सनातन धर्म के देवों की और मूर्तियों की इस क़दर निन्दा की है। इस निन्दा को यदि सनातन-धर्मी लोग अज्ञानतिमिर भास्कर आदि इन पुजेरों की पुस्तकों में पढ़ लें तो उन्हें पता लग सकता है कि ये लोग अन्दरखाने सनातन धर्म के कितने विरोधी हैं। इन पुजेरे लोगों की दृष्टि में हरि, हर, ब्रह्मा राम और कृष्ण आदि की जो मूर्तियां सनातन मन्दिरों में हैं वे सब कुदेवों की प्रतिमाएं हैं किन्तु यह पुजेरे लोग अपने जैन मन्दिरों में स्थापन की हुई पारस नाथ नेम नाथ आदि के नाम की प्रतिमाओं को ही पूज्य भाव की दृष्टि से देखते हैं। ये पुजेरे लोग केवल जैन मूर्तियों की ही पूजा में मोक्ष प्राप्ति रूप फल मानते हैं किन्तु सनातन मूर्तियों में नहीं मानते। इतना ही नहीं

क्योंकि सनातन मन्दिरों में रही हुई श्री राम चन्द्र आदि की मूर्त्तियों को ये लोग कुदेव मानते हैं और उन के पूजनार्चन आदि को मिथ्यात्व (अज्ञानता) मानते हैं।

—०—

दान देते समय :
श्री जैन माडरन स्कूल को भी
याद रखें ॥

६ "दण्डी आत्माराम जी के लेखों द्वारा शिव जी वेश्यागामी और उमा (पार्वती) वेश्या और भी सनातन धर्म के माने हुए देवों की निन्दा।"

प्रश्न :—ये सनातन धर्म के माने हुए देवों के विरोध की बातें आप अपने वचन द्वारा ही कहते हैं या कहीं आप के पास दूसरे लोगों की ओर से सनातन धर्मियों के देवों की निन्दा और विराधता का प्रमाण भी है?

उत्तर :—हम जो कुछ कहते हैं सप्रमाण कहते हैं।

प्रश्न :—अच्छा फिर बतलाइये सनातन धर्म

के माने हुए देवों को इन ढण्डी मतानुयाइयों ने कहा पर कुदेव लिखा है ?

उत्तरः–देखिए ढण्डी वल्लभविजय जी के मान्य गुरु ढण्डी आत्माराम जी अपने बनाए हुए 'अज्ञान-तिमिर भास्कर" द्वितीय खण्ड के पृष्ट ३० पर सनातन धर्म के देवों के विषय में क्या गद उछालते हैं। उन का लेख है :–

"कि शिव जी, राम, कृष्ण, ब्रह्मा इत्यादि १८ दूषणों से रहित नहीं थे, अर्थात् १८ दूषणों सहित थे। (वे १८ दूषण काम, क्रोध, मोह, और लोभादि हैं।) दण्डी आत्मा राम जी ने लिखा है, "कि शिव जी कामी थे। वेश्या व परस्त्री गमन भी करते थे। रागी, द्वेषी क्रोधी और अज्ञानी भी थे। इत्यादि

अनेक दूषण शिवजी में थे, इस लिए शिवजी परमेश्वर नहीं थे। लोगों ने उन को यूं ही ईश्वर मान लिया है।"

आगे श्री राम चन्द्र जी के विषय में भी लिखा है :–

कि राम चन्द्र जी सीता से भोग करते थे, इस लिए काम से रहित न थे। अर्थात् कामी थे। संग्रामादि करने से राग द्वेष से रहित भी नहीं थे। राज्य करने से त्यागी नहीं थे। शोक, भय, रति, अरति, हास्यादि दुर्गुणों से संयुक्त थे।" इसी तरह श्री कृष्ण जी को भी दयडी आत्माराम जी ने

उपरोक्त दोषों से संयुक्त बतलाया है।

और आगे चलकर दण्डी आत्माराम जी लिखते हैं :-

"कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों को काम ने स्त्रियों के घर का दास बनाया था।" सनातन भाइयों को दण्डी वल्लभ विजय जी के मान्य गुरु आत्माराम जी के इन लेखों से अच्छी तरह पता लग गया होगा कि ये लोग सनातन धर्म के माने हुए देवों से और उन की सनातन मन्दिर में स्थापन की हुई मूर्तियों से और सनातन धर्म से कितना घनिष्ट सम्बन्ध और प्रेम रखते हैं।

जिस प्रकार दण्डी वल्लभ विजय जी के मान्य गुरु दण्डी आत्माराम जी ने अपने बनाए हुए "अज्ञान तिमिर भास्कर" में सनातन धर्म के माने हुए देवों को और उन के देवों की बनाई हुई मूर्तियों को कुदेव आदि शब्दों द्वारा निन्दा की

है इसी प्रकार ढूण्डी आत्मा राम जी ने अपने बनाये हुए "जैन तत्त्वादर्श" (उत्तरार्द्ध) के पृष्ठ ४७८ पर सनातन धर्मियों के माने हुए एक प्रसिद्ध अवतार शिव जी और उमा (पार्वती) दोनों के विषय में बहुत गंद उछाला है। महादेव पार्वती के विषय में ऐसे २ गंदे शब्दों का प्रयोग किया है जो सनातन धर्मियों को सुनने मात्र से भी दुःख दायी है। ढूण्डी आत्मा राम जी ने लिखा है:

"कि महादेव एक समय उज्जैन नगर में गया। वहां चंड प्रद्योत राजा की एक शिवा नाम की राणी को छोड़कर दूसरी सर्व राणियों के साथ विषय भोग करा, और भी सर्व लोगों की बहुबेटियों को बिगाड़ना शुरू किया। इसी पृष्ट पर लिखा है "कि महेश ने विद्या बल

से सैंकड़ों ब्राह्मणों की कुमारी कन्याओं को विषय सेवन करके बिगाड़ा।"

"उपरोक्त लेख का यह भाव निकला कि महेश जी विषयी, परस्त्रीगामी और लोगों की बहुबेटियों के साथ व्यभिचार करने वाले दुराचारी थे। इसी पृष्ट पर पार्वती जी के विषय में लिखा है :–

"कि उमा (पार्वती) उज्जैन में रहने वाली एक बड़ी रूपवती वेश्या थी। उस का यह प्रण था कि मुझे अमुक बड़ी संख्या में जो अधिक धन देगा, वही मेरे से विषय रमन रूप प्रेम पोषण कर सकेगा। जो कोई भी उस के कहे मूजब धन देता था, सो उस के पास जाता था।"

साथ यह लिखना कि इनकी आत्मा राम जी ने उमा (पार्वती) जी को भी दुराचारणी पर पुरुष रमन करने वाली बाजारू स्त्री (वेश्या) बतलाया है। भगवान् महावीर स्वामी के फरमाए हुए पवित्र और प्रामाणिक ३२ जैन शास्त्रों में शिव जी के विषय में वेश्या व परस्त्रीगामी होना और पार्वती जी का वेश्या कर्म कमाना ऐसा कोई लेख नहीं है। और हो भी कैसे सकता है क्योंकि भगवान् महावीर स्वामी पूर्ण समदृष्टि थे। वह किसी का दिल दुखाना और निन्दा करनी उचित नहीं समझते थे। भगवान् महावीर स्वामी जी का सिद्धान्त तो यह है, कि पाप बुरा है, पापी नहीं महर्षि भगवान् महावीर स्वामी जी ने बुरे कर्म की निन्दा की है बुरे कर्म करने वाले कर्ता की नहीं, वास्तव में बात भी यही है। यदि कोई बुरा है तो बुरे कर्म से ही है। बुरे कर्म त्याग देने पर वही व्यक्ति संसार में एक श्रेष्ठ आत्मा कहलाने लग जाता है। देखिए वाल्मीकि जी, सदना कसाई, और प्रभा चोर(जो कि ५०० चोरों के

समूह को साथ लेकर जहा तहा डाक मारता था) ऐसे २ अपराधी जीव भी बुरे कर्म छोड कर ससार मे यश और कीर्ति के भागी बन चुके है। सरकार भी चोर जार पुरुषों का नेक चालचलन का प्रमाण मिलने पर चोर जारों मे से उन का नाम निकाल देती है। किसी भी व्यक्ति की निन्दा करना यह एक महा नीच कर्म है। एक स्थान पर कहा भी है, "कि पक्षियों मे काग चाण्डाल है, जो जिस घडे में पानी पीता है, उसी में पीठ फेर कर अपना मल डाल देता है। पशुओं में गधा चाण्डाल कहा है, जिस को गगा यमुनादि में कही पर भी स्नान कराया जाए, फिर भी वह रेते में ही लेट कर प्रसन्न होता है। उस अज्ञानी गधे को अपने शरीर तक की शुद्धि का भान नही होता है। तीसरा चाण्डाल है जो मुनि होकर क्रोध करे और समाज में, जाति में, बरादरियों में जहा तहा फूट डाले। अर्थात मनुष्य जाति के अन्तर्गत वैर विरोध पैदा करे।" साधु का धर्म तो यही है कि फटे हुओं को मिलावे। और सर्व चाण्डालों का चाण्डाल वह है

जो किसी व्यक्ति की निन्दा करता है । चाण्डाल (लौकिक परिभाषा में) भंगी को कहते हैं । भंगी मल को हाथ से नहीं उठाता है किन्तु झाड़ू या अस्थि द्वारा उठाता है, किन्तु निन्दा करने वाला दूसरों की निन्दा करके निन्दा रूपी गंदगी अपनी जिह्वा से उठाता है । इसी लिए भगवान् महावीर स्वामी जी ने अपने मुख से फरमाए हुए शास्त्रों में किसी भी व्यक्ति की निन्दा नहीं की है । महादेव पार्वती आदि सनातन धर्म के देवों की निन्दा प्राचीन स्थानकवासी जैनों के प्रामाणिक ३२ शास्त्रों म कहीं भी नहीं आई है । न मालूम इनकी आत्मा राम जी ने ऐसी निन्दा करने में क्या लाभ समझा है । यह बात तो सनातन भाई इनकी वल्लभ विजय जी आदि दूसरे लोगों से ही मालूम कर सकते हैं ।

विशेष नोट :—यहां पर जो "अज्ञान तिमिर भास्कर' और 'जैन तत्त्वादर्श" के लेख लिखे गए हैं ये मति कल्पित नहीं हैं । यदि किसी व्यक्ति को शंका हो तो उपरोक्त पुस्तकें पढ़कर अपनी तसल्ली कर सकता है ।

१०. दण्डी आत्माराम जी मन्त्रवादी ।"

किंचित मात्र हम इस बात का भी दिग्दर्शन करा देना उचित समझते हैं कि दण्डी आत्मा राम जी ने जो शुद्ध प्राचीन स्थानकवासी जैनों को दण्डी दीक्षा धारण करने के बाद मूर्त्तिपूजक पुजेरे बनाए हैं, वह उन की कोई आत्मशक्ति या त्याग की आकर्षणता की शक्ति नहीं थी, किन्तु भोली जनता को अनेक प्रकार के मन्त्र और धन आदि के प्रलोभन देकर शुद्ध धर्म से भ्रष्ट करके मिथ्यात्व में डाला है। यदि आप ने इस का प्रमाण देखना हो तो आप को "जैनाचार्य श्री आत्मा नन्द जी जैन शताब्दी स्मारक ग्रन्थ से स्पष्ट रूप से मिल सकता है।

(इस के प्रमाण के लिए आप उपरोक्त पुस्तक के हिन्दी विभाग का १९ पृष्ठ देखें।)

एक बाल चन्द्र जी आचार्य यति के ग्रन्थ का शीर्षक है "सत्यवादी श्री विजयानन्द सूरि" यति बाल चन्द्र आचार्य श्री शताब्दि स्मारक ग्रंथ में कुछ लेख देना चाहिये थे किन्तु उन के विचार में यह बात निश्चित न हो सकी कि वह श्री आत्माराम जी के विषय में क्या लेख लिखें। बहुत समय के मनन के पश्चात यति जी इस भाव को पहुँचे कि वह विजयानन्द जी के विषय में सत्यवादी होने का लेख लिखें और यति जी ने लिखा है –

"कि श्री विजयानन्द सूरि के शिष्य शान्ति विजय जी के साथ मैं ने कुछ वर्ष रहकर जैन शास्त्रों का अध्ययन किया था। शान्ति विजय जी यद्यपि (द्रव्य) धन रखते थे, किन्तु फिर भी विरक्त त्यागी थे, क्योंकि यह ज्यों ही

धन आता था, त्यों ही उस को खर्च कर दिया करते थे, किन्तु लोगों के पास जमा नहीं कराते थे, और न ही ब्याज लेते थे। बहुत सारे यति या श्रावक लोग जो उन के पास आते थे, कुछ न कुछ लेकर ही जाते थे। उन शान्ति विजय जी की मेरे पर बहुत कृपा थी। एक दिन मैं ने उन से प्रश्न किया – कि आपने रोगापहारिणी, अपराजिता श्री सम्पादिनी आदि विद्याएं कहां से सीखी हैं ?" उन्हों ने उत्तर दिया .- "कि मेरे गुरु श्री आत्मा राम जी ने एक यति से ये विद्याएं ली थीं और उन से मैं ने भी सीख ली थी।" इस लिए मैं श्री

आत्मा राम जी के मन्त्रवादी होने के विषय में ही लेख लिखूं । ऐसा निर्णय करके यति जी मन्त्रवाद का लेख लिखते हुए लेख के अन्त में आकर लिखते हैं :- "कि आत्माराम जी के दिग्विजयी होने का मूल कारण एक मन्त्रवाद ही है" अर्थात् जो कुछ भी श्री आत्मा राम जी ने लोगों को अपने अनुयायी बनाने में सफलता प्राप्त की है वह मन्त्र प्रभाव का ही असर था । 'मन्त्रवादी श्रीमद् विजया नन्द सूरि' शीर्षक लेख से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो गई है कि इन्हीं आत्मा राम जी ने स्थानक वासी महाजनता को जहां तहां बहका कर जो अपने मतानुयायी बनाया है वह इन के तप, जप संयम आदि कठिन क्रिया और आत्मशक्ति का प्रभाव नहीं था अपितु रोगापहारिणी, अपराजिता और श्री सम्पादिनी आदि विद्याओं का ही असर था । रोगापहारिणी विद्या से मतलब है कि वह रोग दूर करने की रोगापहारिणी विद्या से वैद्यक भी

करते होंगे । श्री सम्पादिनी विद्या से मतलब है कि वह धन कमाने की श्री सम्पादिनी विद्या से धन भी कमाते होंगे क्योंकि श्री सम्पादिनी विद्या उसी को कहते हैं जिस के द्वारा धनसम्पादन किया जाए अर्थात् जोड़ा जाए । तीसरी अपराजिता विद्या का मतलब है अपने आप को अजित बना लेना अर्थात् स्वयं को कोई भी न जीत सके। आत्मशक्ति वाली सच्ची आत्माएं तो स्वयं इतनी बलवान होती हैं, कि उन पर कोई भी तुच्छ व्यक्ति अपना प्रभाव डालकर उन्हें जीत नहीं सकता। जहां आत्मशक्ति की आवश्यकता थी, वहां पर भी अपराजिता विद्या से ही काम लिया जाता होगा। किया भी क्या जाए, आत्मशक्ति तो तप, जप, संयम और सत्य आदि सद्गुणों द्वारा ही प्राप्त होती हैं। अगर जीवात्मा में ये उपरोक्त गुण न हों, तो आत्मीय दिव्य शक्ति के दर्शन कैसे हो सकते हैं ! जिस व्यक्ति के गुरु श्री सम्पादिनी अर्थात् धन कमाने की विद्या की आवश्यकता रखते हों, यदि उन के शिष्य श्री शान्ति विजय जी

ने अपने पास धन रख लिया, तो क्या कोई आश्चर्य की बात है। इस बात में तो कोई आश्चर्य नहीं है किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि पूज्य आत्मा राम जी के शिष्य शान्ति विजय जी धन रखने पर भी विरक्त त्यागी बतलाए गए हैं। क्या सच्चे जैन साधुओं के आदर्श त्याग का यही नमूना है कि धन रखने पर भी विरक्त त्यागी कहलाएं। नहीं नहीं भगवान् महावीर स्वामी जी ने तो शास्त्र दशवैकालिक के चतुर्थ अध्याय में सच्चे जैन साधु के पंचम महाव्रत अपरिग्रह का कथन करते हुए फ़रमाया है "कि अल्प या बहुत सूक्ष्म या स्थूल सचित्त या अचित्त अर्थात् किसी प्रकार के भी परिग्रह का जैन साधु संग्रह न करे" इस दशवैकालिक सूत्र के लेख से स्पष्टतया सिद्ध हो गया है कि जैन साधु सोना, चांदी ताम्बरादि का संग्रह न करे। यदि संग्रह करे, तो वह सच्चा जैन साधु कहलाने का अधिकारी नहीं है। भगवान् महावीर स्वामी जी ने शास्त्र उत्तराध्ययन जी के १५ अध्याय की गाथा आठवी में अन्न मन्न के

न करने वाले को ही साधु कहा है। गाथा :

"मन्तं मूलं विविहं वेज्जचिन्तं,
वमन विरेयण धूमणेत्त सिणाणं,
आ उरे सरणं, तिगिच्छियं च,
तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू।"

इस गाथा का भावार्थ है, "कि मन्त्र, जड़ी, बूटी तथा अनेक प्रकार के वैद्यक उपचारों को जान कर काम में लाना, जुलाब देना, वमन कराना, धूप देना, आखों के लिए अंजन बनाना, रोग आने से हाय २ आदि शब्द पुकारना, वैद्यक सीखना, आदि क्रियाएं साधु के लिए योग्य नहीं हैं। इस लिए जो उपरोक्त क्रियाओं का त्याग करता है, वही सच्चा साधु है। इस गाथा के भाव से भी यह बात स्पष्ट हो गई है कि मन्त्र और चिकित्सादि विद्याओं को सीख कर चिकित्सादि करने वाला सच्चा साधु नहीं है। शास्त्र का यह प्रमाण होने पर भी फिर मन्त्र जन्त्र करने वाले को गुरु माना जाए,

यह हठ नहीं तो और क्या है।

जो पुजेरे लोग ऐसा कहा करते हैं कि सुधर्मा स्वामी जी के बारे में शास्त्रों में पाठ चलता है "मन्त्र पहाये" अर्थात् सुधर्मा स्वामी जी मन्त्र ज्ञान में प्रधान थे। श्री सुधर्मा स्वामी जी तो आगम विहारी थे। क्या इन्द्री आत्मा राम जी भी चार ज्ञान के धनी या १४ पूर्व के पाठी आगमविहारी थे? इन्द्री आत्मा राम जी की तरह श्री सुधर्मा स्वामी जी ने भी तन्त्राविनी अपराजिता आदि विद्याओं का सहारा थोड़ा ही लिया था। उन्होंने (सुधर्मा स्वामी जी) तो अपने प्रबल तप, जप संयम और सत्य बल के आधार पर ही धर्मप्रचार करके संसार को सच्चे मार्ग पर लगाया था किसी मन्त्र यन्त्रादि द्वारा नहीं।

हमारा कर्तव्य तो केवल सचाई को ही दिग्दर्शन कराना है "जामे जो जैसा करेगा वैसा भरेगा" यह जैन सिद्धान्त का तो निर्णय ही है।

इति शुभम् श्री संघ कल्याण मस्तु ॐ शान्ति शान्ति सत्यासत्य निर्णय पुस्तिका समाप्त ॥

"मूर्त्तिवाद चैत्यवाद के बाद का है और मूल सूत्रों में मूर्त्तिपूजा विधान नहीं है" उपरोक्त विषय पर प० बेचर दास जी का लेख ॥

प० बेचर दास जी जो कि श्वे० मूर्त्तिपूजक संप्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान हैं। तथा जिन्हों ने भगवत्यादि अनेक आगमों का सुचारु रूप से अध्ययन, मनन एव संपादन किया है। तथा जिन के पास रह कर कितनेक जैन साधुओं ने जैनागमाध्ययन किया है—उन्हों ने एक पुस्तक गुजराती भाषा में "जैन साहित्य मां विकार थवाथी थयेली हानिओ" नाम से लिखी है। तथा जिस का कि हिन्दी अनुवाद श्री मान् तिलक विजय जी ने "जैन साहित्य मे विकार" के नाम से लिख प्रकाशित करवाया है। उस पुस्तक में से कुछ आंशिक भाव पाठकों के सामने मननार्थ रक्खे जाते हैं। आशा है कि पाठकगण शांत हृदय से इन्हें पढ़कर निर्णय दृष्टि से पक्ष पात का परित्याग करके, सत्य को

धारण कर अपने श्रेय के भागी बनेंगे।

पं० जी ने जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि शास्त्रों के प्रमाण देकर बहुत ही सरल शब्दों में बतलाया है कि चैत्य शब्द वास्तव में तीर्थंकर, गणधर और साधुओं के मृतक देह संस्कारित भूमि भागपर बने हुए स्मारक चिन्हों से सम्बन्ध रखता है। पं० जी लिखते हैं कि हमारे पूर्वजों ने चैत्यों (स्मारकों) को पूजने के लिये नहीं बनाया था बल्कि उन मरण वाले महापुरुषों की यादगार के तौर पर निर्माण किये थे। परन्तु बाद में उन की पूजा प्रारंभ हो गई और वह आज तक चली आ रही है। पं० जी का लेख है कि मूर्ति का मूल इतिहास चैत्य से ही प्रारंभ होता है। और मूर्ति का प्रथम आकार भी चैत्य ही है। वर्तमान समय में जो मूर्तियां देख पड़ती हैं वे चत्कामिण की दृष्टि से विकास को प्राप्त हुई हैं। यह एक प्रकार की शिल्प कला का नमूना है। जो मूर्तियां श्वे० जैनियों के अधिकार में हैं उन का सौन्दर्य और शिल्प [illegible] आगाकर

तथा इसी प्रकार के अशिष्ट, असंगत और अशास्त्रीय आचरण के द्वारा नष्ट भ्रष्ट कर डाला है। तथापि वे मूर्ति पूजने का दावा करते हैं। मैं इसे धर्म भ्रम और ढोंग समझता हूं।

अपने पूज्य देव की मूर्ति को पुतली के समान अपनी इच्छानुसार नाच नचाते हुए भी उस की पूजना का सौभाग्य इसी समाज ने प्राप्त किया है। अपने इस समाज की ऐसी स्थिति देख कर मूर्तिपूजक के तौर पर मुझे भी बड़ा दुःख होता है। प० जो आगे चलकर लिखते हैं कि चैत्य यादगिरी (Memorials) के लिये ही बनाये गये थे। समय पाकर वे पूजे जाने लगे। धीरे २ उन स्थानों में देवकुलिकाएं होने लगीं। उन में चरण पादुकाएं स्थापित होने लगी और बाद में भक्त जनों के भक्ति आवेश से उन्हीं स्थानों में बड़े २ देवालय एवं बड़ी २ प्रतिमाएं भी विराजित होने लगीं। यह स्थिति इतने मात्र से ही न अटकी परन्तु अब तो गांव २ में और गाँव में भी मोहल्ले २ में वैसे अनेक देवालय बन गये हैं। और बनते जा रहे हैं।

ज्यों २ चैत्य के आकार बदलते गये त्यों २ उसके रूप भी बदलते गये। प्रारंभिक चैत्य शब्द अन्वर्थ था अर्थात् केवल स्मारकों का यादगार रूप था।

पं० जी चैत्य शब्द के अर्थ इस प्रकार लिखते हैं। (१) चिता पर चिना हुआ स्मारक चिन्ह (२) चिता की राख (३) चिता ऊपर का पाषाण खण्ड। (४) ध्वजा या शिला लेख। (५) चिता पर का पीपल या तुलसी आदि का पवित्र पौधा (६) चिता पर चिने हुए स्मारक के पास का यज्ञ स्थान या होम कुण्ड। (७) चिता के ऊपर का देहरी के आकार का विशाल स्तूप, साधारण देहरी चिता पर की पादुकावली देहरी या चरण पादुका, चिता पर का देवालय।

प्रिय सज्जनों! पुस्तक लेखक के उपरोक्त लेखों से यह बात स्पष्ट रूप में सिद्ध हो गई है कि वास्तव में मूर्त्तिपूजा कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है।

उपरोक्त लेख में मृतक स्थान पर स्मृति के लिये बनाये गये स्मारक जो कि केवल यादगार के लिये ही बनाये गये थे। उन्हें आहिस्ते२ अज्ञानी

जीव पूजने लग गये। जिस का भयंकर परिणाम यह हुआ कि उन्हीं स्मारकों के स्थान में मूर्तियां घड़ २ कर जहां तहां रख दी गईं और वे पूजी जाने लगीं। सारांश यह निकला कि मूर्तिपूजा कोई शास्त्रोक्त नहीं है। एक विकृत प्रथा है।

मूर्ति विरोध विषय में तेरहवी शताब्दी के एक दिगम्बर प० श्री आशाधर जी ने ३६ सागार धर्मामृत में पृष्ट ४३० पर लिखा है कि 'यह पंचम काल धिक्कार का पात्र है। क्योंकि इस काल में शास्त्राभ्यासियों का भी मंदिर या मूर्तियों के सिवा निर्वाह नहीं होता।"

प्रिय बन्धुओ! उपरोक्त लेख में श्रीमान् आशाधर जी ने मूर्तिमान्यता के विषय में कितना दुःख प्रगट किया है। इस लेख से साफ यही भाव प्रगट होता है कि मूर्तिपूजा शास्त्राभ्यासी ज्ञानियों का विषय नहीं है। यह तो अज्ञानी जीवों की ही बाल लीला है।

पं० जी का लेख है कि मूर्तिवाद चैत्यवाद के बाद का है। यानि उसे चैत्यवाद जितना प्राचीन

मानने के लिये हमारे पास एक भी ऐसा मजबूत प्रमाण नहीं है जो शास्त्रीय सूत्रविधि निष्पन्न या ऐतिहासिक हो। यों तो हम और हमारे पूज्याचार्य भी मूर्तिवाद को अनादि ऋषभ तथा महावीर स्थापित बतलाने का बिगुल बजाने के समान बातें किया करते हैं। परन्तु जब हम बातों को सिद्ध करने के लिये कोई ऐतिहासिक प्रमाण या अंग सूत्रों का विधि वाक्य मांगा जाता है तब वे बगलें झांकने लगते हैं। और अपनी प्रवाह वाली बात को आगे कर अपने बचाव के लिये बुजुर्गों को सामने रखते हैं। मैं ने बहुत ही कोशिश की तथापि परम्परा और "बाबा वाक्य प्रमाणं" के सिवा मूर्तिवाद को स्थापित करने के सम्बन्ध में मुझे एक भी प्रमाण या विधि विधान नहीं मिला। मैं यह बात हिम्मत पूर्वक कह सकता हूं कि मैं ने मुनियों या श्रावकों के लिये देव दर्शन या देव पूजन का विधान किसी भी अंग सूत्र में नहीं देखा। इतना ही नहीं बल्कि भगवती आदि सूत्रों में कई एक श्रावकों की कथाएं आती हैं उन में

उन की चर्चा का भी उल्लेख है। परन्तु उस में एक भी शब्द ऐसा मालूम नहीं होता कि जिस के आधार से हम अपनी उपस्थित की हुई देव पूजन और तदाश्रित देव द्रव्य की मान्यता को वडी भर के लिये भी टिका सकें। मैं अपने समाज के कुल गुरुओं से नम्रता पूर्वक यह प्रार्थना करता हूं कि यदि वे मुझे इस विषय का एक भी प्रमाण या प्राचीन विधान विधि वाक्य बतलायेंगे तो मैं उन का विशेष ऋणि हूंगा।

प्रिय पाठको! इस उपरोक्त लेख से आप को पूर्णतया पता चल गया होगा कि पण्डित जी ने किस सिंह गर्जना के साथ बतलाया है कि अग शास्त्रों में साधु और श्रावक के लिये मूर्ति दर्शन एवं पूजा का विधान नहीं है। बस अब भी यदि श्वेताम्बर मूर्तिपूजक लोग शास्त्रों द्वारा मूर्तिपूजा सिद्ध करने की मिथ्या चेष्टा करें तो यह उन की बात हठ ही मानी जायगी। बुद्धिमान् जनता को यह सूचित किया जाता है कि इन मूर्तिपूजक लोगों के धोखे में आकर कभी भी मूर्तिपूजा रूप

मिथ्यात्व का सेवन न करें। मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त होती तो पं० जी के कुल गुरुओं के प्रति लिये गये वेदिक का कोई न कोई शास्त्रोक्त प्रमाण से उनसे देने को पेश्तर मंजूर करता किन्तु करें कहां से! जब शास्त्रों में मूर्तिपूजा का विधान है ही नहीं। जिस के पास रकम ही नहीं है तो वह रकम के भुगतान के समय पर रकम को भुगतान करे तो कहां से करे। सिवा इधर उधर बगलें झांकने के और क्या करे! यही बात यहां पर मूर्तिपूजकों के विषय में भी समझ लेना।

मूर्तिपूजक जैनों ने जो वीतराग परिग्रह परित्यागी तीर्थंकर देवों की दुर्दशा मूर्तिपूजा द्वारा की है इस बात लीला के विषय में इसी पुस्तक में से थोड़ा सा यहां लिखा जाता है।

मक्सी जी, (मूर्तिपूजकों का धर्मस्थान) में अंग्रेज सरकार ने श्वे० दि० सम्प्रदाय के लिये पूजा करने का समय नियत किया हुआ है। तदनुसार श्वेताम्बरों की पूजा हुए बाद दिगाम्बर भाई पधारते हैं। और वे मूर्ति पर लगाये हुए चक्षु तथा श्वेता

म्बरों की की हुई पूजा को रद्द करते हैं। फिर इन्द्र पूज्य बनने की आशा से खुश होते हुए हमारे श्वेताम्बरों की पूजा की वारी आने पर वे उस मूर्त्ति पर फिर से चक्षु और टीका आदि लगा देते हैं। इस प्रकार की विधि किये बाद ही वे दोनो भाई (श्वे० दि०) अपनी २ की हुई पूजा को पूजा रूप मानते हैं। परन्तु मैं तो इस रीति को तीर्थंकर की मजाक और आशातना के सिवा अन्य कुछ भी नहीं मानता। यह तो संसार में दो स्त्री वाले भद्र पुरुष की जो स्थिति होती है उसी दशा मे हम ने अपने बीतराग देव को पहुचा दिया है। यह हमारी कितनी कीमती प्रभुभक्ति है? ऐसी भक्ति तो इन्द्र को भी प्राप्त नहीं हो सकती? मैं मानता हू कि यदि इस मूर्त्ति में चैतन्यता होती तो यह स्वय ही अदालत मे आकर अपनी कदर्थनीय स्थिति से मुक्त होने की अपील किये बिना कदापि नही रहती। यह मूर्त्तिपूजा नही बल्कि उस का पैशाचिक स्वरूप है।

इस ऊपर कथन किये हुए प० जी के लेख से

इस जड़ मूर्ति पूजक जैनों की प्रभु भक्ति का कितना सुन्दर चित्र स्पष्ट रूप से प्रतीत हो जाता है। जिस अज्ञानता सूचक अंध श्रद्धा से ये लोग इन अपनी मान्य मूर्तियों से पेश आते हैं वह घटना बड़ी विचारणीय है कि जिन की एक व्यक्ति आकर पूर्व आँखें निकाल लेता है फिर अपनी मान्यतानुसार नई आँखें चढ़ा कर उन्हें पूजता है। क्या यही सच्ची प्रभु भक्ति है? कि अपने माने हुए भगवान् की आँखें तक निकाल ली जायें। ऐसी सेवा तो मूर्ति रूप भगवान् को बहुत ही महंगी पड़ती होगी। वास्तव में मूर्ति चेतनता रहित होने के कारण नहीं जा सकती नहीं तो भक्तों के द्वारा की हुई अपनी दुर्दशा का निर्णय सरकार द्वारा करा ही लेती।

चैत्य वासियों की उत्पत्ति वीरात् ८८२ वर्ष में हुई इस से पहले चैत्य वासियों की सम्प्रदाय नहीं थी। वीरात् ८८८ वर्ष में ब्रह्मदीपिका सम्प्रदाय हुई। वीरात् १४६४ वर्ष में बड़ गच्छ की स्थापना हुई। विक्रमात् ११०४ वर्ष में खरतर सम्प्रदाय का जन्म हुआ। विक्रमात् १२८५ वर्ष में तपागच्छ की नींव

रक्खी गई। प्रमाण के लिये हिन्दी अनुवाद जैन साहित्य में विकार पुस्तक का पृष्ठ ११९ देखो।

मूर्त्तिपूजक जो इस बात का दावा करते हैं कि हम प्राचीन हैं यह दावा भी उनका मिथ्या ही है। उपरोक्त लेख से ८८२ के वर्ष के बाद में ही इन तमाम गच्छों का होना सिद्ध होता है। इस लिये इन पुजेरे लोगों की मूर्त्तिपूजा का अनादि या भरत आदि के समय से प्रचलित होना बिलकुल सिद्ध नहीं हो सकता है। इसी पुस्तक के पृष्ठ १० पर चैत्यवाद नामक दूसरे स्तम्भ में अनुवादक जी लिखते हैं कि हमारा समाज मूर्त्ति के ही नाम से विदेशी अदालतों में जाकर समाज की अतुल धन सम्पत्ति का तगार कर रहा है।

वीतराग सन्यासी फकीर की प्रतिमा को जैसे किसी एक बालक को गहनों से लाद दिया जाता है उसी प्रकार आभूषणों से शृंगारित कर उस की शक्ल में वृद्धि की समझता है। और परम योगी वर्द्धमान या इतर किसी वीतरागी की मूर्त्ति को विदेशी पोशाक जाकिट कालर वगैरह से सुसज्जित

कर उस का खिलौने जितना भी सौन्दर्य भष्ट प्राप्त करके अपने मानव समाज की सफलता समझ रहा है। मैं इसे धर्मदम्भ और ढोंग समझता हूं। अनुवादक जी के इस लेख से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है कि वास्तव में वीतरागी परिग्रह परित्यागी तीर्थंकर देव की मूर्ति बनाकर और उसे शृंगारित कर अपने नैत्रों की विषय पूर्ति के लिये एक गुडिया बना लेना, यह उन महापुरुषों की एक महान अविनय और आशातना करना है बुद्धिमान पुरुषों को भूल कर भी उपरोक्त आशातना सूचक क्रियाएं नहीं अपनानी चाहिये।

पं० जी का यह भी लेख है कि अभी तक ऐसा एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ जिस से यह प्रमाणित हो सके कि श्री वर्द्धमान के समय मूर्तिवाद वर्तमान के समान एक मार्ग स्वरूप प्रचलित हुआ हो। तथा वीर निर्वाण से ९८० वर्ष में संकलित हुआ साहित्य भी इस विषय में किसी प्रकार का विधायक प्रकाश नहीं डालता कि जो मूर्तिवाद के साथ प्रधान्यता विशेष सम्बन्ध-

रखता हो, इतने सरल सत्य को अवश्य समझ सकते हैं कि वीर निर्वाण से ९८० वर्ष तक के समय में एक प्रवाही मार्ग रूप में मूर्तिवाद की उत्कट गंध तक मालूम नहीं होती।

पं० जी के इस ऊपर कथन किये गये लेख से साफ २ रूप से प्रगट हो गया है कि श्री वर्द्धमान के समय में मूर्तिवाद जनों में नहीं था। यदि होता तो प० जी ऐसा कभी न लिखते कि अभी तक ऐसा (मूर्तिवाद पोषक) एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ। प० जी के लेख से यह बात भी स्पष्टतया सिद्ध हो गई कि वीर निर्वाण से ९८० वर्ष में लिखे गये जो जैन शास्त्र हैं उनमें मूर्तिवाद के विधान की गंध तक नहीं है। फिर भी नमालूम जड़ोपासक जैन लोग मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है या अनादि प्राचीन है ऐसा मिथ्या कोलाहल मचाकर भद्र जनता को पाषाणोपासक बनाने की मिथ्या चेष्टा क्यों करते हैं।

प० जी सप्रमाण बल पूर्वक ऊपर बतला चुके हैं कि अंग सूत्रों में मूर्तिवाद बिलकुल नहीं है।

जो बात अंग सूत्रों के मूल पाठों में नहीं है वह अंगों के उपांगों, निरुक्तियों भाष्यों चूर्णियों अव चूर्णियों और टीकाओं में कहां से हो सकती है। उपांग निरुक्तियां भाष्य चूर्णियां, अवचूर्णियां और टीकाएं इसी लिये लिखी जाती हैं कि किसी भी तरह मूल का अर्थ स्पष्ट हो जाय। परन्तु मूल में रही हुई किसी तरह की अपूर्णता को पूर्ण करने के लिये मूल पर भाष्य चूर्णियां आदि नहीं की जाती।

प्रिय पाठक गणों ऊपर कथन किये गये सब का भाव यह निकला कि अंग सूत्रों में जब मूर्ति पूजा नहीं है तो अंग सूत्रों के मूल का स्पष्ट करने वाले उपांग सूत्र या निरुक्तियां भाष्य चूर्णियां अवचूर्णियां टीकाएं आदि से भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं हो सकती। सवाल पैदा होता है कि फिर यह मूर्तिपूजा जैनों में कहां से आई? इस का जवाब है कि मूर्तिपूजकों ने अपने मन घड़न्त ग्रन्थ बनाकर उन में मूर्तिवाद प्रवेश किया। जिस का भयंकर परिणाम यह हुआ कि आज बहुत सारी

अनभिज्ञ मनुष्य जाति जड़ोपास्य की अनन्य भक्त बनकर मिथ्यात्व का पोषण कर रही है। यही कारण है कि प्राचीन शुद्ध श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन अगसूत्र विरुद्ध भाष्य चूर्णियादि को प्रामाणिकता न देकर केवल ३२ सूत्रों को ही प्रामाणिक मानते हैं। इन का पाषाणोपासना से बचे रहने का मुख्य कारण भी प्रामाणिक ३२ सूत्रों की मान्यता ही है।

पं० जी आगे चलकर मूर्त्तिपूजक सम्प्रदाय के साधु समाज के लिये लिखते हैं कि ये लोग अपने भक्त श्रावकों का सट्टा करने की सलाह देते हुए, सट्टा करने के लिये दूसरे गांव भेजते हुए, और लाटरी या सट्टे भक्त जनों को लाभ प्राप्त हो, इस लिये स्वयं आप करते हुए कई एक मुनियों को मैं ने प्रत्यक्ष देखा है। जिन्हें सन्तान न होती हो ऐसी स्त्रियों पर तो गुरु जी के हलके हाथ से वासक्षेप पड़ता हुआ आज कल भी सब अपनी नजर से देखते हैं। यह वासक्षेप भभूति का भाई

है। पालिताना और अहमदाबाद जैसे साधुओं के अखाड़े वाले स्थानों में इस रिवाज का अनुभव होना सुशक्य है।

और भी मूर्तिपूजक साधुओं के विषय में उपरोक्त पुस्तक में लिखा है कि आधुनिक समय में मृतक के बाद पूजा पढ़ाना पूजा की सामग्री रखना स्वामिवत्सल और अठाई महोत्सव करने की जो धमाल चल रही है। यह वैश्य वासियों की ही प्रवृत्ति का परिणाम है। वर्तमान में जब कहीं भगवती सूत्र या कल्प सूत्र पढ़ा जाता है। तब श्रावकों को अपनी जेबमें हाथ डालना पड़ता है यह बात पाठक भली भांति जानते हैं।इसरीतिमें इतना सुधार हुआ है कि गुरु जी खुले तौर से उस द्रव्य को नहीं लेते। जिस प्रकार विवाह में सीठने गाये जाते हैं वैसे ही व्याख्यान में गुरु जी ने जोइये सोनाना पूठा अमें क्यां थी लाविये" इत्यादि मधुर ध्वनि से आविष्कार

गुरु जी की मखाक उडाती हैं। यह रीति निन्दनीय है। और यह चैत्य वासियों की ही प्रथा है। अतः अनाचरणीय है। आगे चल कर लिखा है। जहां साधुओं के लिये रसोडे खुलते हों। विहार में मुनियों के लिये ही गाडी व रसोइया साथ भेजा जाता हो वहां फिर भिक्षा की निर्दोषता की बात ही क्या कहनी? (इसी का नाम तो पंचम काल है) वर्तमान समय में इन रीतियों की विद्यमानता के लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नही है। क्योंकि यह सब जगह प्रचलित है।

श्री हरिभद्र सूरि जी भी सम्बोध प्रकरण ग्रंथ पृष्ठ सं० २-१३-१८ मे लिखते हैं कि ये लोग चैत्य में और मठ में रहते हैं। पूजा करने का आरम्भ करते हैं। अपने लिये देव द्रव्य का उपयोग करते हैं। जिन मन्दिर और शालाएं चिनवाते हैं। और भभूती डालते हैं। रंग बिरंगे सुगन्धित वस्त्र पहनते हैं। स्त्रियों के समक्ष गाते हैं।

साध्वियों द्वारा लाये हुए पदार्थ खाते हैं। तीर्थ पन्डों के समान अधर्म से धन का संचय

करते हैं। सचित पानी का उपयोग करते हैं। लोच नहीं करते। स्वयं भ्रष्ट होते हुए भी दूसरों को आलोचना देते हैं। पाड़ी तो उपाधि की भी पडिलेहना नहीं करते। स्नान करते हैं। तैल लगाते हैं और शृंगार करते हैं। स्त्रियों का प्रसंग रखते हैं। अपने हीनाचार वाले मृतक गुरुओं की दाहस्थली पर पीठ चुनवाते हैं। मात्र स्त्रियों के समक्ष भी वे व्याख्यान देते हैं। और साध्वियाँ मात्र पुरुषों के सामने व्याख्यान देती हैं। क्रय विक्रय करते हैं। प्रवचन के बहाने विकथाएं करते हैं। मुग्ध भोले जनों को ठगते हैं। जिन प्रतिमाओं को बेचते हैं। और खरीदते हैं। वैद्यक करते हैं। यंत्र, मंत्र तावीज़ और गण्डा इत्यादि करते हैं। प्रवचन सुनाकर गृहस्थों से धन की आशा रखते हैं। ये लोग विशेषतर स्त्रियों को ही उपदेश देते हैं। श्री हरिभद्र जी अन्त में लिखते हैं कि ये साधु नहीं किन्तु पेट भरने वाले पेटू हैं।

यद्यपि इन चैत्य वासियों की पतित क्रियाओं को भी हरिभद्र जी द्वारा लिखा हुआ जैसा बहुत

बहा है उस में से यहा पर थोड़ी सी ही बातें लिखी हैं। यदि चैत्य वासियों में ऐसी पतिता चरण की क्रियाएं पाई जाती हैं, तभी तो श्री हरिभद्र सूरि जी ने दुःख के साथ ऐसा लिखा है। बस इस में और कोई नई टीका टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। पतिताचारी चैत्य-वासियों की आचार भ्रष्टता के लिये उपरोक्त सूरि जी का लेख ही पर्याप्त है।

दुःख के साथ हमें तो इतना ही लिखना है कि जिनके साथ विहार में रसोईखाना, रसोइया या भक्त लोग साथ ही रहकर रसोई बनाते जाएं और अपने मान्य गुरुओं को सदोष आहार खिलाते जाएं फिर भी वे सच्चे भक्त होने का दावा करें और गुरु भी अपने निमित्त की हुई रसोई खाकर भी सच्चे साधुपने का अपने में झूठा दंभ करें तो यह कितनी दुःसाहस की बात है। वासक्षेप और भभूतों का डालना और जिन प्रतिमाओं का बेचना, अपने निमित्त विहार में की गई रसोई का लेना, ऊपर कही हुई ये तमाम बातें चैत्य

वासियों व वणिग्वर्गों के अन्दर ही पाई जाती है। इस में श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन साधु जो कि चैत्यमोपासक हैं । वे इन क्रियाओं से अपने आप को विरक्त रखते हैं ।

आगम वाचनवाद के विषय में पं० श्री ने जो लिखा है उस में से कुछ अंश पाठक जनों के समझार्थ यहां पर दिया जाता है। पं० श्री का कथन है कि चैत्य वासियों में से कितनेक व्यक्तियों ने यह पुकार उठाई थी कि श्रावकों के समक्ष सूक्ष्म विचार प्रगट न करने चाहिये । अर्थात् जैसे ब्राह्मणों ने वेद का अधिकार अपने लिये ही रख कर दूसरों का उस के अनधिकारी ठहराकर अपनी सत्ता जमाई थी। वैसे ही इन चैत्यवासियों ने भी आगम पढ़ने का अधिकार अपने ही लिये रिज़र्व रक्खा। यदि वे श्रावकों को भी आगम पढ़ने की छूट दे देते तो अंग ग्रंथों को पढ़कर जो धन वे स्वयं उपार्जन करना चाहते थे वह किस तरह बन सकता था ? तथा अंग ग्रंथों के अभ्यासी श्रावक उनका दुराचार देखकर उन्हें किस तरह मान देते।

इस प्रकार श्रावकों को आगम पढ़ने की छूट देने पर अपने ही पेट पर लात लगने के समान होने से, और अपनी सारी पोल खुल जाने के भय के कारण ऐसा कौन सरल पुरुष होगा जो अपने समस्त लाभ को अनायास ही चला जाने दे।

पूर्वोक्त हरिभद्र सूरि जी के उल्लेख से यह बात भली भांति मालूम हो जाती है कि श्रावकों को आगम न बांचने देने का बीज चैत्य वासियों ने ही बोया है।

चैत्य वासियों का उपरोक्त कथन अयुक्त है क्यों कि अंग सूत्रों में श्रावकों को, लब्धार्थ, गृहीतार्थ, पृष्टार्थ, विनिश्चितार्थ जीवाजीव के जानने वाले और प्रवचन से अचलनीय वर्णित किया है। इस से वे सूक्ष्म विचारों को भी जानने के अधिकारी है। इतना कुछ ज्ञानाधिकार श्रावकों के विषय में शास्त्रों द्वारा सिद्ध होने पर भी हमारे धर्म गुरु हम सूत्र पढने के अनाधिकारी बतलाते हैं।

प्रिय पाठक महोदय जी! जो ये उपरोक्त लेख श्रावकों के शास्त्राध्ययन की विरोधिता के विषय में

लिखे गये हैं यदि चैत्य वासी श्रावकों के लिये ऐसे लेखों द्वारा ऐसी बाधा बन्धी न करते तो उन की कैसे बन आती ? उपरोक्त लेख में जो यह शब्द आया है कि अंग ग्रंथों को पढ़ कर जो धन से स्वयं उपार्जन करना इच्छते थे वह किस तरह बन सकता था। इस का साफ मतलब यही है कि चैत्यवासी जिस तरह ब्राह्मण लोग भागवतादि सुनाकर लोगों से कथा समाप्ति पर कथा का भोग पकड़कर द्रव्य वसूली करते हैं इसी प्रकार यह चैत्य वासी साधु लोग भी अंग आदि शास्त्र सुनाकर कथा की समाप्ति पर गृहस्थों से धन प्राप्त करते थे। क्या परिग्रह परित्यागी भगवान् महावीर स्वामी के सच्चे जैन साधुओं का यही आदर्श त्याग है ?

यह द्रव्य वसूली प्रथा कल्पादि सूत्र की बांचनी पर आज कल भी पाई जाती है। यदि श्रावकों के लिये शास्त्राध्ययन करने का अधिकार दे देते तो आज इन लोगों के अनुयायी श्रावक लोग कल्पित देव गुरु की अंध भक्ति के आवेश में आकर,

कल्पित देवों और अपने गुरुओं के आगे अज्ञानी लोगों की तरह नाचना, गाना, भगतपाना ऐसी जगत हसाई रूप शास्त्र विरुद्ध चेष्टाएं न करते। यही कारण है कि नाचने कूदने में अनन्तानन्त व्रत फल बतलाकर भोली जनता को तप जप संयम से वञ्चित रक्खा गया है। यदि चैत्य वासियों व श्रीमान् दण्डियों के अनुयायी शास्त्राभ्यासी होते तो नृत्यादि इन वाह्यक्रियाडम्बरों में कभी भी धर्म ना मानते।

जैन सत्तक शब्द के सम्बन्ध के कारण हमारी इन चैत्य वासियों व मूर्तिपूजक दण्डियों के प्रति यही हार्दिक भावना है कि इन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो, जिस से ये लोग अपने पतिताचरण और शिथिलाचारीपन को छोड़ कर अपने कल्याण के भागी बनें।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॥